* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

भगवान् श्रीकृष्ण

पंचदेव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ — गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, जुलाई २०१५ ई० — संख्या ७

पूर्ण संख्या १०६४

एक ही परम प्रभु पाँच उपास्यरूपोंमें

एक परम प्रभु चिदानन्दघन परम तत्त्व हैं सर्वाधार।
सर्वातीत, सर्वगत वे ही अखिल विश्वमय रूप अपार॥
हरि, हर, भानु, शक्ति, गणपति हैं इनके पाँच स्वरूप उदार।
मान उपास्य उन्हें भजते जन भक्त स्वरुचि-श्रद्धा-अनुसार॥

× × ×

एक 'उपास्य' देव ही करते लीला विविध अनन्त प्रकार।
पूजे जाते वे विभिन्न रूपोंमें निज-निज रुचि-अनुसार॥
सर्वोपरि—कर्तव्य—धर्म है यही एक, जीवनका सार।
करें स्वकर्मोंसे उपासना उनकी ही, रख शुद्ध विचार॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, जुलाई २०१५ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹ 2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹ 13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—कभी-कभी हम ऐसा सोचते हैं कि क्या करें, विश्वरूप भगवान्‌की पूजाके उपयुक्त साधन ही हमारे पास नहीं हैं। साधनके अभाववश ही हम पूजा नहीं कर सकते; पर ऐसी धारणा हमारे मनका भ्रम ही है। यह बात बिलकुल नहीं है कि जो साधन हमारे पास नहीं हों, वे हो जायँ, तभी प्रभुकी पूजा होगी। असलमें हमारे अन्दर पूजाकी सच्ची चाह होनी चाहिये। चाह होनेपर हम अपनेद्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे, प्रत्येक चेष्टासे उनकी पूजा कर सकते हैं। जीवन-निर्वाहके लिये कोई-न-कोई कार्य तो हम करते ही हैं; हम दूकानदार हैं, दूकानपर हम प्रतिदिन दस घण्टे नियमसे बैठते हैं। अब सोचकर देखें, ग्राहकके रूपमें हमारी दूकानपर कौन आता है? प्रभु ही तो आते हैं। फिर प्रभुको उस रूपमें देखकर, पहचानकर, सम्मानपूर्वक उचित मूल्य लेकर उनकी सेवाकी दृष्टिसे यदि हम उन्हें ईमानदारीके साथ अच्छी वस्तु दे देते हैं तो यह माल बेचना ही हमारी पूजा हो जायगी। किंतु हमारी वृत्ति तो यह होती है कि ग्राहकसे अधिक-से-अधिक मूल्य लेकर बदलेमें घटिया माल उसके हाथमें खपा दें। हम नमूनेमें दिखाते कुछ और हैं और देते समय देते कुछ और हैं! इस प्रकार अपने ही इष्टदेवकी हम वंचना करते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें ठगकर उलटा हम उन्हींपर झूठा अहसान लादते हैं कि 'देखो जी! यह वस्तु इतने मूल्यमें हमने आपको दे दी, दूसरी जगह आपको नहीं मिलेगी।'

याद रखो—भगवान् देखते हैं—'देखो, यही व्यक्ति मन्दिरमें तो मेरे समक्ष विविध उपचार रखकर बड़े आदर-भावसे मेरी पूजा करता है; पर जब मैं इस रूपमें यहाँ उसकी पूजा ग्रहण करने आया, तब बुरी तरहसे यह मुझको एवं अपने-आपको ठग रहा है।' वास्तवमें तो हमीं ठगे जाते हैं; क्योंकि सर्वसमर्थ प्रभु तो नित्य अपनी अखण्ड महिमामें स्थित हैं, अपने स्वरूपानन्दसे नित्य परिपूर्ण हैं, हमारी पूजा ग्रहण करनेकी आवश्यकता उन्हें नहीं है; वे तो स्वभावगत करुणावश हमारा मंगल करनेके लिये ही हमारी पूजा स्वीकार करते हैं। पूजा करनेका जो कुछ भी फल है, लाभ है, वह तुरंत पूजा करनेवालेको ही वे लौटा देते हैं, जैसे सज-धजकर हम दर्पणके सामने खड़े होते हैं तो वह उस समय हमारे मुखका सौन्दर्य उसमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको भी ठीक उसी मात्रामें सुन्दर बना देता है; हमारी सजावटको दर्पण पूरा-पूरा हमें ही तुरंत उसी क्षण लौटा देता है; वैसे ही प्रभुके प्रति की हुई सद्भावना, उन्हें समर्पित की हुई वस्तु उन्हें छूकर उसी क्षण हमारे पास चली आती है। हमारी पूजाको प्रभु ज्यों-की-त्यों अविलम्ब हमें ही अर्पित कर देते हैं, हमारी दूकानपर ग्राहकके रूपमें आये हुए भगवान्‌की यदि हम वंचना करते हैं तो वह असद् व्यवहार हमींपर प्रतिफलित होता है, दूसरेपर नहीं; फलतः प्रभुको ठगने जाकर हम स्वयं ठगे जाते हैं! ऐसा न करके यदि हम अपने दैनिक व्यवहारको विशुद्ध बना लें, दूकानपर आये हुए प्रत्येक ग्राहकके रूपमें प्रभुको पहचानकर सबको समान आदरभाव देते हुए पवित्र लेन-देन करें तो यह हमारी खरीद-बिक्री ही विश्वरूप प्रभुकी पूजा बन जायगी। ऐसे ही यदि हम चिकित्सक हैं तो प्रत्येक रोगीमें प्रभुको पहचानकर, शिक्षक हैं तो प्रत्येक छात्रमें भगवान्‌को विराजित देखकर और वकील हैं तो प्रत्येक वादी, प्रतिवादी, न्यायाधीश, साक्षीमें अपने इष्टदेवको ही अभिव्यक्त देखकर यथायोग्य अपने उचित विशुद्ध व्यवहारसे उनकी पूजा कर सकते हैं।

याद रखो—हम जहाँ जिस क्षेत्रमें हैं, जिस परिस्थितिमें जो भी काम करते हैं, वहीं उसी क्षेत्रमें, उसी परिस्थितिमें अपने कामको विशुद्ध बना सकते हैं तथा फिर अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें प्रभुको देखकर उन्हें यथायोग्य रूपमें अपनी विशुद्ध पूजा समर्पित कर सकते हैं। अनादि-संस्कारवश एक बार ऐसा करनेमें कुछ कठिनताका अनुभव हो सकता है, पर यदि हममें लगन है, अपने जीवनको पूजामय बनानेके लिये हम कटिबद्ध हैं तो अनन्त शक्तिमान् प्रभुकी शक्ति अपने-आप हमें ऊपर उठाने लगेगी, कठिनाइयाँ दूर होती जायँगी, आगे-से-आगे सुगम पथ दीखता जायगा। फिर हमें यह भ्रम नहीं होगा कि पूजाके उपयुक्त साधन ही हमारे पास नहीं है, हम करें तो क्या करें? हमें तब स्पष्ट दीखेगा कि जिस वेषमें प्रभु पूजा ग्रहण करने आये हैं, उसके अनुरूप पूजाकी सामग्री उन्होंने पहलेसे ही हमारे पास भेज रखी है। यदि परम उत्साहसे हम उन सामग्रियोंका खुले हाथों उपयोग करेंगे तो धीरे-धीरे हमारा जीवन पूजामय होकर ही रहेगा। **'शिव'**

भगवान्‌के विशुद्ध प्रेमका उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क ६ पृ०-सं० ९ से आगे]

प्रेमी प्रेमास्पदके बिना बहुत समयतक नहीं जी सकता। हम देखते हैं कि जैसे भरतका प्रेम है, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी प्रेम भगवान्‌में कम नहीं था। जब श्रीराम लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि 'तुम घरपर रहो, क्योंकि भरत और शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए हैं और हम वनमें चले जायँगे तो पिताजी शोकके कारण दुखी हो जायँगे। माता-पिताकी सेवा करना अपना धर्म है, नीति है, इसे खयालमें रख करके तुम्हें घरमें ही रहना चाहिये।' इसपर लक्ष्मणजी कहते हैं कि 'प्रभो! धर्म और नीतिका उपदेश तो उसे देना चाहिये, जिसे संसारमें विभूति चाहिये, कीर्ति चाहिये। मैं तो आपका प्रेम-पालित हूँ, आप मुझे अलग न करें। यदि आप मुझे अलग कर देंगे तो इसमें मेरा क्या वश है, क्या उपाय है।' भगवान् घर रहनेके लिये आग्रह करते हैं, इसपर लक्ष्मण कहते हैं—

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥

हे नाथ! आपने 'तुम घरपर ही रहो'—यह जो बात कही, वह ठीक कही—उचित बात कही; क्योंकि मैं यहाँ रहनेके लायक ही हूँ। कारण कि यदि मेरा आपमें प्रेम होता तो आप रहनेके लिये कभी नहीं कहते। इसलिये आपने उचित बात कही। मैं प्रेमका पात्र नहीं हूँ। इस विषयमें मेरी कायरता ही मुझे प्रतीत होती है। कायरता क्या? कायरता यह कि मुझमें ऐसी शूरवीरता नहीं है कि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो आपके वियोगमें, विरहमें व्याकुल होकर मैं मर जाऊँगा। आपके प्रति मुझमें इतना प्रेम नहीं है कि आपके वियोगको मैं बर्दाश्त न कर सकूँ। आपके वियोगमें मैं प्राण खो बैठूँ, ऐसी मुझे उम्मीद नहीं है। यदि वास्तवमें मेरा आपमें इतना प्रेम होता कि आपके वियोगमें मेरे प्राण नहीं रहेंगे तो आप मुझे छोड़कर कभी नहीं जाते। इसलिये इस विषयमें मैं कायर हूँ, आपका कोई दोष नहीं है। मेरेमें कायरता है, मैं पात्र नहीं हूँ। भगवान्‌ने सोचा कि यह तो प्राण खो बैठेगा, इसलिये इसे साथमें ही ले चलो। रामने कहा—'भैया, तुम हमारे साथ चलो, लेकिन माता सुमित्राका हुक्म ले आओ।' माता सुमित्रा भगवान्‌में बहुत ही प्रेम रखती थीं। जब उन्होंने सोचा कि मेरा लड़का भगवान्‌की सेवाके लिये उनके साथमें जाता है तो हमारा अहोभाग्य है। मैं पुत्रवती हूँ ऐसा समझती हूँ; क्योंकि मेरा पुत्र भगवान्‌का भक्त है, मैं वास्तवमें पुत्रवती हूँ—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

पुत्रवती वही युवती है, जिसका पुत्र भगवान् रामका भक्त हो, अन्यथा उसका पुत्र जनना व्यर्थ ही है, इससे तो बाँझ ही भली—'***नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।***' कितना उच्च भाव है। इतना ही नहीं सुमित्रा अपने पुत्रसे कहती हैं—

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

'हे तात! तुम्हारे ही भाग्यसे राम वन जा रहे हैं। रामके वन जानेमें दूसरा और कोई कारण नहीं है।' कैकेयी और कुबरी मंथरा—ये तो निमित्तमात्र हैं। सच्ची बात तो यह है कि यहाँ तो सेवा करनेवाले बहुत थे और वनमें तू अकेला ही है। जब सीता और राम वन जा रहे हैं तो बेटा, तेरा यहाँ क्या काम है? मेरे समान सीताको और दशरथके समान रामको समझना चाहिये। मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम सीता और रामकी सेवा करना। मेरा यही उपदेश है और यही मेरा आदेश है। कितना सुन्दर उपदेश दिया है।

सुमित्राका और लक्ष्मणका भगवान् राममें प्रेम था, सीताका तो प्रेम था ही। सीताको भगवान् राम उपदेश देते हैं कि 'हे सीता! तुम हठ मत करो, हठका नतीजा

अच्छा नहीं होता। तुम अपने घरमें रहो, वनमें महान् क्लेश है। वनमें सरदी पड़ती है, गरमी पड़ती है, जोरोंसे हवा चलती है, भयंकर बारिस होती है, वृक्षोंके नीचे रहना पड़ता है, खानेके लिये मिलते हैं कन्दमूल-फल, वे भी कभी मिलते हैं, कभी नहीं मिलते। स्त्रियोंको चुरानेवाले वहाँ राक्षस घूमते रहते हैं। भाँति-भाँतिके वनमें क्लेश हैं।' सीताने कहा—'प्रभो! आपने वनके जितने क्लेश बतलाये हैं, वे सब मिल करके आपके वियोगके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं हैं, आपके वियोगमें तो—

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥

'संसारके जितने भोग—विषयभोग हैं, वे सब रोगके समान हैं।' विषय-भोगोंके भोगनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है, इसलिये विषयभोग रोग ही हैं और ये जो गहने-आभूषण हैं, ये भाररूप हैं तथा संसार यम-यातनाके सदृश है। आप मुझे सुकुमारी कहते हैं। कहते हैं कि 'वनमें कुश-कण्टक आदि हैं। अच्छा, यदि मैं राजकुमारी हूँ तो क्या आप राजकुमार नहीं हैं? आपको जब थकावट होगी तो मैं आपके चरणोंको दबा करके आपकी थकावटको दूर करूँगी। मैं आपकी दासी हूँ, रात्रिमें आपके चरणोंको पलोटूँगी और आपका मुखारविन्द देख-देखकर चकोर पक्षीकी भाँति मुग्ध होती रहूँगी। उस समय मुझे किसी प्रकारका क्लेश नहीं होगा।' इस प्रकार कहकर अन्तमें कहती हैं कि 'आप मुझे छोड़नेकी जो बात कहते हैं, यह सुनकर मैं बर्दाश्त करती हूँ, यह मेरे लिये शर्मकी बात है, दुःखकी बात है। क्योंकि—

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥

(रा०च०मा० २।६७)

आप बार-बार मुझे यहाँ रहनेके लिये कह रहे हैं। पतिव्रता स्त्रीके लिये पतिके वियोगकी बात बहुत कठोर है, आपके वियोगके कठोर वचन सुनकर मेरा हृदय फटता नहीं है, मेरा हृदय वज्र बन गया है। आपके कहनेसे मुझे यह मालूम होता है कि आप मुझे छोड़कर जायँगे और मैं जीवित रहूँगी तथा आपके विषम वियोगकी यन्त्रणा—विषम वियोगका जो दुःख है, उसे मेरे पामर प्राण सहन करेंगे, मेरे प्राण निकलेंगे नहीं, मैं मरूँगी नहीं।' यह सुनकर भगवान्‌ने सोचा कि 'मेरे वियोगमें यह प्राणोंका त्याग कर देगी', इसलिये भगवान् सीताको साथमें ले गये।

अपने प्रेमास्पदका वियोग प्रेमीके लिये मरनेके तुल्य है। इस बातका रहस्य प्रेमी ही जान सकता है। प्रेमास्पदको देख-देखकर प्रेमी मुग्ध होता है। उनका दर्शन करके, स्पर्श करके, वार्तालाप करके, चिन्तन करके जीता है। भगवान्‌में प्रेम बढ़ानेके लिये अपने इष्टदेवका जो स्वरूप है—चाहे भगवान् श्रीरामका हो, चाहे श्रीकृष्णका हो, चाहे भगवान् विष्णुका हो, चाहे भगवान् शिवका हो, उसका ध्यान करके ध्यानावस्थामें भगवान्‌से वार्तालाप करना, उनके चरणोंका स्पर्श करना, नेत्रोंसे उनका दर्शन करना, कानोंसे उनके प्रेम-भरे वचनोंका श्रवण करना, दर्शन-भाषण-स्पर्श करके मुग्ध होना चाहिये; क्योंकि भगवान्‌के दर्शन भाषण-स्पर्श-वार्तालाप—चाहे मानसिक ही क्यों न हों—रसमय हैं, अमृतमय हैं, प्रेममय हैं। भगवान्‌का जो स्पर्श हाथोंके लिये है, वह अमृतके समान है। भगवान्‌का वचन कानोंके लिये अमृतके समान तथा भगवान्‌में जो दिव्य गन्ध है, वह नासिकाके लिये अमृतके समान है, भगवान्‌के जो दर्शन हैं, वे नेत्रोंके लिये अमृतके समान हैं, तात्पर्य यह कि सभी अमृतमय हैं, आनन्दमय हैं। भगवान्‌का दर्शन, भाषण, स्पर्श तथा वार्तालाप बहुत ही मधुर हैं, भगवान्‌की जो मूर्ति है, वह मधुर है, इसीलिये उसे माधुरी मूर्ति कहते हैं। इनकी सारी चेष्टा मधुर है। भगवान्‌की लीला मधुर, भगवान्‌का स्वरूप मधुर, भगवान्‌की वाणी मधुर, भगवान्‌के गुण मधुर तथा भगवान्‌का नाम मधुर। जो इस प्रकारसे अनुभव करता है, वह भला भगवान्‌के बिना कैसे जी सकता है। वह क्षणभर भी भगवान्‌के बिना नहीं रह सकता। भगवान्‌के वियोगको भक्त बरदाश्त नहीं कर सकता और भगवान् भी भक्तके वियोगको बरदाश्त नहीं कर सकते। प्रेम बढ़ जानेसे

भगवान् मिल जाते हैं। वह भगवान‍्के निकट सदा ही रहता है। मिलनेके बाद यदि भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं तो भगवान‍्का भक्त भगवान‍्को छोड़कर कहीं जा सकता ही नहीं। यद्यपि भगवान् उसे छोड़कर अन्तर्धान हो जायँगे, तब भी मनसे उससे दूर नहीं होते। प्रत्यक्ष न मिलनेके विरहकी व्याकुलतामें भक्तकी गोपियों-जैसी दशा हो जाती है। विरहकी व्याकुलतामें रुक्मिणीजीकी भी दशा बेदशा हो गयी थी। जब शिशुपाल ब्याहनेके लिये आया और भगवान् समयपर नहीं पहुँचे तो वह एकदम व्याकुल होकर विलाप करने लगी। फिर भगवान‍्ने सोचा कि प्राण खो बैठेगी, उसी समय रथ लेकर भगवान् रुक्मिणीके पास आ पहुँचे और रथमें बैठाकर ले आये।

भगवान‍्में जिनका अतिशय प्रेम हो जाता है—अनन्य प्रेम हो जाता है, विशुद्ध प्रेम हो जाता है, उनसे मिले बिना भगवान‍्से रहा नहीं जाता। उसी समय प्रकट हो जाते हैं। सारे संसारसे प्रेम हटाकर हमलोगोंको केवल भगवान‍्से प्रेम करना चाहिये। हमारा प्रेम विशुद्ध होना चाहिये—निष्काम होना चाहिये। जब भगवान‍्से मिलनेकी इच्छा होती है, भगवान‍्में प्रेम होता है, तब भगवान् उसी समय प्रकट हो जाते हैं। भक्तलोग कहते हैं कि 'भगवान‍्के मिलनेके समय भक्तको इतना आश्चर्य होता है—इतना आनन्द होता है कि वह उसे सँभाल नहीं सकता।' उसे यह आश्चर्य होता है कि 'कहाँ तो भगवान् और कहाँ मैं? क्या भगवान् वास्तवमें प्रकट हो गये' और यह आश्चर्य होता है कि 'मैं तुच्छ और भगवान् इतने उच्चकोटिके महापुरुष!' आनन्दकी सीमा नहीं रहती। उसे आश्चर्य होता है कि 'क्या वास्तवमें भगवान् ही मुझे मिल रहे हैं या मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हो गया है या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ?' महान् आश्चर्य होता है, इतना आनन्द होता है—इतना आनन्द होता है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। उसके नेत्रोंकी पलक एकदम नहीं गिरती, वह एकटक देखता ही रहता है, पलक गिरने-इतनी देर भी वह बरदाश्त नहीं कर सकता, देख-देखकर मुग्ध होता जाता है। केवल उसे भगवान‍्का ही ध्यान रहता है। अपने-आपका भी ज्ञान नहीं रहता। उसकी दशा बेदशा हो जाती है। फिर जब वह अपनेको सँभालता है तो इतना मुग्ध हो जाता है कि उसे किसी बातकी चिन्ता पैदा ही नहीं होती; क्योंकि उसके सारे संशयोंका नाश हो जाता है, सारे पापोंका नाश हो जाता है। वह मन्त्रमुग्धकी तरह भगवान‍्को देखता रहता है और भगवान् उसे देखते रहते हैं। 'भगवान् क्या हैं', इस तत्त्व-रहस्यको यदि हम समझ जायँ तो फिर भगवान‍्के बिना हम जी नहीं सकते, रह नहीं सकते, उनके वियोगको बरदाश्त नहीं कर सकते। हमलोग भगवान‍्का वियोग बरदाश्त कर रहे हैं, तभी भगवान् हमें वियोग दे रहे हैं और जो बरदाश्त नहीं कर सकता, उसे भगवान् वियोग कैसे देंगे? भगवान‍्का अधिकार ही नहीं है कि उसे वियोग दें, यह न्याय भी नहीं है। हमलोग भगवान‍्के प्रेमके तत्त्वको नहीं समझते, प्रेमके रहस्यको नहीं समझते, नहीं तो हम भगवान‍्के बिना कैसे जी सकते। जो भगवान‍्के लिये अपने-आपको समर्पण कर देता है, भगवान् उसके लिये अपने-आपको समर्पित कर देते हैं। जो इस तत्त्वको समझता है, वह तो भगवान‍्का ही होकर रहता है और यह समझता है कि 'इस संसारमें भगवान् ही हमारे हैं और भगवान‍्के समान और कोई है ही नहीं। भगवान‍्के समान हमारा कोई नहीं है, हमारा हितैषी कोई नहीं है, अपना कोई नहीं है।' शिवजी कहते हैं—'हे उमा! रामके समान हित करनेवाला दुनियामें और कोई भी नहीं है। माता-पिता, गुरु-बन्धु संसारमें भगवान‍्के समान कोई है ही नहीं'—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

'देवता, मनुष्य, तपस्वी, सबकी यह रीति है, सब कोई स्वार्थके लिये ही प्रीति करते हैं'—

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

स्वार्थका त्याग करके तो केवल भगवान् ही प्रेम करते हैं या भगवद्भक्त। इन दोको छोड़कर दुनियामें तीसरा कोई बिना स्वार्थके प्रीति करनेवाला नहीं है। [**समाप्त**]

छोटा-बड़ा कौन है ?

(महात्मा पं० श्रीशम्भुदयालजी शर्मा)

यह मानवदेहधारी जीव अपने विचारोंका अभिमानी होकर अपने-आपको महान् समझे हुए है। अन्य सांसारिक छोटी-बड़ी विभूतियोंका हमें क्या पता कि वे अपने मनमें अपने-आपको क्या समझे बैठी हैं। हमें क्या पता कि एक चींटी अपने मनमें क्या अभिमान रखती है। जबकि यह मनुष्य ही मनुष्यजातिमें अपनी बुद्धि-विवेचनाके द्वारा यह पता न लगा सका कि कौन छोटा और कौन बड़ा है, तो हमें विश्वकी किसी भी वस्तुको छोटा या बड़ा कहनेका क्या अधिकार है ? जबकि यह सब प्रपञ्च मायामय ही है तो यह सब सामग्री एक ही भावकी हुई। यह जो कुछ नाम-रूपात्मक जगत् दृष्टिमें आता है, इसमें पदार्थ तो सब एक समान ही हैं। मिट्टीका बना हुआ राजा खिलौना, मिट्टीके सेवक खिलौनेसे अभिमान तो करता है, परंतु उसे यह नहीं मालूम कि तेरी और उसकी मिट्टीमें क्या अन्तर है।

यदि गन्ना अपने माधुर्यगुणसे अपने-आपको महान् समझता है तो गिलोय भी अपने गुणोंमें कोई सानी नहीं रखती। यदि ह्वेल मछली अपने-आपको मशीन समझकर अभिमान करती है तो एक छोटा कीट भी अपने-आपको एक सूक्ष्म पुर्जा समझकर उसे ठोस बतलाता है। यदि मनुष्य विविध विद्याओंमें पारंगत हुआ अभिमान करता है तो चींटी भी अपनेमें विचित्र घ्राणशक्तिका अनुभव करके मन-ही-मन फूल सकती है।

तात्पर्य यह कि वही एक परमात्मा अपनी विभूतियोंमें आप ही बैठा हुआ अपनेको सबसे बड़ा कह रहा है। वास्तवमें न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। इन विविध वर्णकी हंडियोंमें वही एक परमात्मा उफन रहा है।

एक ही प्रकाश भिन्न-भिन्न प्रकारके शीशोंमेंसे विविध रंगका होकर भास रहा है। वह ईश्वर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुके भी उतना ही निकट है, जितना एक बृहद्-से-बृहद् विभूतिके। वह सबके समीप है और सबसे दूर है।

जो नगमा सोजमें है वही साजमें है।
फर्क नजदीको दूरकी आवाजमें है॥

उस विभुकी प्रत्येक स्वल्प और महान् विभूति अपने रंग-रूपमें परिपक्व होकर जहाँसे निकली है, उसी अपने उपादान कारण ईश्वरमें विलीन हो जाती है। प्रत्येक विभूतिका गुण, आकार, प्रकार, धर्म और समय जितना-जैसा नियत है, उतनी ही सीमामें वह अपनी थिरक दिखलाकर उसी महापटकी ओटमें लय हो जाती है। यह जो मनुष्य 'धर्म-धर्म' कहता-सुनता है, उसी ईश्वरकी वाणी है। आप ही अपनेसे बने हुए आवरणसे आच्छादित हुआ, अपनी महत्ताका ध्यान धरता हुआ इस आवरणसे निकल जाता है। विश्वकी प्रत्येक विभूति अपने-अपने ठेकेमें अपने निर्मल और सूक्ष्म स्वरूपकी ओर अपना-अपना आलाप अलाप रही है।

क्योंकि वह आप ही सब विभूतियोंमें विराजमान है। इसलिये कोई भी एक विभूति दूसरी विभूतिको अपनी ऐंठसे नहीं गाँठती है। दो समानके स्वत्वाधिकारियोंमें छोटा-बड़ा कौन ?

एक राजाके दो पुत्र हों और उन दोनों पुत्रोंको पृथक्-पृथक् यह ज्ञान हो कि वही एक राज्याधिकारी है, तो वे दोनों परस्पर राज्याभिमानी होकर एक-दूसरेको तिरस्कृत करते हैं। इसी प्रकार चींटीसे लेकर ब्रह्मातकको दशा है। सबमें एक ही सत्ता है। चींटी यदि ब्रह्माको आँख बताती है तो वह क्या छोटे बापकी बेटी है ? उसमें भी तो वही ऐंठ रहा है जो ब्रह्मामें है।

जब वह आत्मा अपने सूक्ष्म और निर्मल स्वरूपमें निकलकर खड़ा होता है तो सब विभूतियोंमें वह आप-ही-आप दृष्टि आता है। उसको यह समस्त संसार (जड-चेतन) यह और वह, मैं और तू, हाँ और नहीं, अपनेहीसे उत्पन्न हुआ दृष्टि आता है। कोई भी मनुष्य दूसरेकी बातोंको सुन-सुनाकर इस माया-जालसे नहीं निकल सकता। यह दूसरोंका कहना-सुनना आत्माका उस व्यक्तित्वके भीतर अपना मायामें बिखरा हुआ पन है। कोई भी पुरुष अपने संकल्पसे अपने आत्मा (ईश्वर)-को पानेके लिये उसमें तत्पर हुआ, उसका

प्रेमी बनकर उसे पा लेता है।

कठोपनिषद्‌में आया है—

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः।
आश्चर्योवक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥

(कठ० १।२।७)

अर्थात् बहुतोंको तो इस आत्माके विषयमें श्रवण ही नहीं प्राप्त होता और बहुत-से सुननेपर भी इसे नहीं जानते। इस आत्मतत्त्वका वक्ता भी आश्चर्यरूप है और इसको प्राप्त करनेवाला श्रोता भी कोई कुशल पुरुष ही है। फिर इस तत्त्वका ज्ञाता (श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ कुशल आचार्यद्वारा उपदेश किया हुआ) भी आश्चर्य-स्वरूप है। अर्थात् मिलना और पहचानना दोनों ही महान् दुर्लभ हैं।

भगवती श्रुति कहती है कि इस आत्मतत्त्वकी प्राप्ति महान् दुर्लभ है साथ ही बहुत सुगम है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूᳬस्वाम्॥

(कठ० १।२।२३)

अर्थात् यह आत्मा न तो वेदादिके अध्ययनसे प्राप्त हो सकता है, न धारणाशक्तिसे और न अनेक शास्त्रोंके सुननेसे ही। (तो इस आत्माको कौन जान सकता है?) जो इसका वरण करता है—इसे यथार्थमें चाहता है। उसी प्रेमीके प्रति यह अपने स्वरूप-तत्त्वको प्रकट कर देता है।

क्योंकि यह आत्मा जिस प्रकार, जिन कारणोंसे मायामें लिप्त हुआ है, उसी पथसे रस लेता हुआ, सरल विधिसे अपने-आपमें आ स्थित होता है। जैसे—वृक्षका बीज, वृक्ष, फल और फूल होकर फिर बीज हो जाता है, इसी प्रकार यह मानवी देह वृक्षरूप है। इसका बीज वही आत्मतत्त्व है। जबतक आत्मा अपने भावको प्राप्त न होगा, तबतक यह शरीररूपी वृक्षमें अंकुरित होता ही रहेगा।

जैसे वृक्ष तो भूमिसे रस खींचते हैं, अमरबेल धरतीके आधार बिना, केवल वृक्षपरसे ही रस खींचती है। इसी प्रकार ये जीव-जन्तु चलते-फिरते हुए ब्रह्माण्डसे अपना रस लेते रहते हैं। विविध जीवोंके रूप-गुण उनके अपने-अपने संकल्पोंके आधारपर हैं। मुख्यतः अपने संकल्पको ही शुद्ध और सबल बनाना है। यह छोटा-बड़ा सब संकल्पमात्र ही है अर्थात् संकल्प ही छोटा और बड़ा है।

'किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार'

(श्रीबेताबजी केवलारवी)

कर अभिमान विषय संग लपटो, मैं अति अधम गँवार।
किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार॥

धन, बल, पायो मैं बौरायो
झूठे जग से प्रीत लगायो
काम, क्रोध बसे नित मन मोरे
सुनियो करुन पुकार।
किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार॥

इते उते भटको लख चौरासी
छूटी न जनम जनम की फांसी
भटक भटक के हार गयो मैं
लीजो मोहि उबार।
किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार॥

पूजा अरु मैं भजन न जानूँ
हौं अति पतित का साधन जानूँ
नंद को लाल-अराधत तुम्हरे
चरन कमल सुख सार।
किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार॥

करो किरपा मोपे भानु किशोरी
अब नहीं जाऊँ सरन तजि तोरी
लगी बेताब लगन चरनन की
सकल जगत आधार।
किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार॥

प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌का वास्तविक स्वरूप कैसा है—इस बातको भगवान् ही जानते हैं या किसी अंशमें वे जानते हैं, जिनको भगवान् जनाना चाहते हैं। आजतक जगत्‌में कोई भी यह नहीं कह सका कि भगवान् ऐसे ही हैं, न कोई कह सकता है और न कह सकेगा। यदि कोई ऐसा कहनेका साहस करता है तो वह या तो भोला है, या आग्रही अथवा मिथ्यावादी है। ऐसा होनेपर भी भगवान्‌के जितने वर्णन जगत्‌में हुए हैं, वे अपने-अपने स्थानमें सभी सच्चे हैं; क्योंकि महान् परमात्मामें सभीका अन्तर्भाव है, जैसे अनन्त आकाशमें सभी मठाकाश, घटाकाश समाते हैं। किसी गाँवमें होनेवाली घटनाको लेकर हम कहें कि जगत्‌में ऐसा होता है तो ऐसा कहना मिथ्या नहीं है; क्योंकि गाँव जगत्‌में ही है, अतएव वह जगत् ही है, परंतु यह बात नहीं कि जगत् वह गाँव ही है। फिर जगत्‌का तो वर्णन हो भी सकता है; क्योंकि वह प्राकृतिक, ससीम और सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा आकलन करनेयोग्य है, परंतु अप्राकृतिक, असीम, अनन्त, अपार, अकल, अलौकिक परमात्माका वर्णन तो हो ही नहीं सकता, इसीलिये वेद उन्हें 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते हैं। निर्गुण अक्षरब्रह्म, विकारशील और जड अपरा प्रकृतिमें स्थित निर्विकार परा प्रकृतिरूप जीवात्मा, अपरा प्रकृति और उसके विकारसे उत्पन्न उत्पत्ति और विनाश धर्मवाले सब पदार्थ, भूतोंका उद्भव और अभ्युदय करनेवाला विसर्गरूप कर्म, व्यक्त जगत्‌का अभिमानी सूत्रात्मा अधिदैव और इस शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित विष्णुरूप अधियज्ञ—ये सब उस नित्य निर्विकार सच्चिदानन्दघन भगवान्‌के विशेष भाव हैं या उसके आंशिक प्रकाश हैं। अवश्य ही स्वभावसे ही पूर्ण होनेके कारण आंशिक प्रकाश होनेपर भी भगवद्रूपमें सभी पूर्ण हैं। ऐसे सबमें स्थित, सर्वनियन्ता, सर्वाधार, सबको सत्ता और शक्ति देनेवाले, सबके अद्वितीय कारण, सबसे परे और सर्वमय भगवान्‌का वर्णन कौन कर सकता है?

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥

(९।४-५)

'मुझ अव्यक्तमूर्तिके द्वारा यह सारा जगत् व्याप्त हो रहा है, सब भूत मुझमें हैं, परंतु मैं उनमें नहीं हूँ, वे सब भूत भी मुझमें नहीं हैं, मेरा यह ऐश्वरयोग देखो कि सम्पूर्ण भूतोंका उत्पन्न और धारण-पोषण करनेवाला होकर भी मैं स्वरूपतः उन भूतोंमें स्थित नहीं हूँ।'

भगवान्‌के इस कथनमें परस्पर विरोधी बातें प्रतीत होती हैं, 'मैं सबमें हूँ और किसीमें नहीं हूँ, सब मुझमें हैं और कोई भी मुझमें नहीं है।' इस कथनका कोई अर्थ सहज ही समझमें नहीं आता। इसीलिये 'परमार्थ' और 'व्यवहार' का भेद करके इसकी व्याख्या की जाती है, परंतु यही तो भगवान्‌का 'ऐश्वरयोग' है। हमारी विषयविमोहित जडबुद्धि इसे कैसे जान सकती है? हमारे लिये जो असम्भव है, भगवान्‌के लिये वह सब कुछ सम्भव है। भगवान्‌में सब विरोधोंका समन्वय है। इसीलिये तो भगवान्‌का किसी भी प्रकारसे किया हुआ वर्णन भगवान्‌के लिये सत्यरूपसे लागू होता है।

भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी, निराकार भी हैं, साकार भी। वे निष्क्रिय, निर्विशेष, निर्लिप्त और निराधार होते हुए ही सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले, सविशेष, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं। सांख्योक्त परस्पर

विलक्षण अनादि पुरुष और प्रकृति, चेतन और अचेतन दोनों शक्तियाँ, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न होता है—भगवान्की ही परा और अपरा प्रकृति हैं। इन दो प्रकारकी प्रकृतियोंके द्वारा वस्तुतः भगवान् ही अपनेको प्रकट कर रहे हैं। वे सबमें रहकर भी सबसे परे हैं। वे ही सबको देखनेवाले उपद्रष्टा हैं, वे ही यथार्थ सम्मति देनेवाले अनुमन्ता हैं, वे ही सबका भरण-पोषण करनेवाले भर्ता हैं, वे ही जीवरूपसे भोक्ता हैं, वे ही सर्वलोक-महेश्वर हैं, वे ही सबमें व्याप्त परमात्मा हैं और वे ही समस्त ऐश्वर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण भगवान् हैं, वे एक होनेपर भी अनेक रूपोंमें विभक्त हुए-से जान पड़ते हैं। अनेक रूपोंमें व्यक्त होनेपर भी एक ही हैं। व्यक्त, अव्यक्त और अव्यक्तसे भी परे सनातन अव्यक्त वे ही हैं; क्षर, अक्षर और अक्षरसे भी उत्तम पुरुषोत्तम वे ही हैं। वे अपनी ही महिमासे महिमान्वित हैं, अपने ही गौरवसे गौरवान्वित हैं और अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित हैं।

इन भगवान्का यथार्थ स्वरूपज्ञान या दर्शन इनकी कृपाके बिना नहीं हो सकता। ये जिसपर अनुग्रह करके अपना ज्ञान कराते हैं, वे ही इन्हें जान सकते हैं और कृपा भक्तोंपर ही व्यक्त होती है। भक्तिरहित कर्मसे, प्रेमरहित ज्ञानसे भगवान्का यथार्थ स्वरूप नहीं जाननेमें आता। निष्काम कर्मसे भगवान्का ऐश्वर्यरूप जाना जाता है और तत्त्वज्ञानसे उनका अक्षर परब्रह्मरूप, परंतु उनके पुरुषोत्तम भावका तो अनन्य प्रेमभक्तिसे ही साक्षात्कार होता है। वैधी भक्ति करते-करते जब वह दिव्य प्रेमरूपमें परिणत होती है। जब भगवान्की अचिन्त्य शक्ति और अनिर्वचनीय ऐश्वर्यको जानकर भक्त केवल उन्हींको परम गति, परम आश्रय और परम शरण्य मानकर बुद्धिसे, मनसे, चित्तसे, इन्द्रियोंसे और शरीरसे सब भाँति सर्वथा अपनेको उनके चरणोंमें निवेदन कर देता है। जब वह उन्हींको मन दे देता है, उन्हींमें बुद्धि लगा देता है, उन्हींको जीवन अर्पण कर देता है, उन्हींकी चर्चा करता है, उन्हींके नाम-गुणका गान करता है, उन्हींमें सन्तुष्ट रहता है और उन्हींमें रमण करता है। इस प्रकार जब देह-मन-प्राण, काल-कर्म-गुण, लौकिक और पारलौकिक भोग, आसक्ति, कामना, वासना सब कुछ उनके अर्पण कर देता है। तब भगवान् उस प्रेमसे भजनेवाले भक्तको अपनी वह दिव्य बुद्धि दे देते हैं, जिससे वह अनायास ही उनको समग्ररूपमें—पुरुषोत्तमरूपमें पा जाता है।

भगवान्ने घोषणा की है कि मैं जैसा भक्तिसे शीघ्र मिलता हूँ, वैसा अन्य किसी साधनसे नहीं मिलता—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

'जिस प्रकार मेरी अनन्य भक्ति मुझे वशमें करती है, उस प्रकार मुझको योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप और त्याग वशमें नहीं कर सकते।'

गीतामें भगवान् कहते हैं—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(११।५३-५४)

'हे परंतप अर्जुन! जिस प्रकारसे तुमने मुझको देखा है, इस प्रकारसे मैं न वेदोंसे (ज्ञानसे), न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ। इस प्रकारसे मैं केवल अनन्य भक्तिसे ही तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ, प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ और अपनेमें प्रवेश करा सकता हूँ, अभिन्नभावसे अपने अन्दर मिला सकता हूँ।'

एक बात और है—ज्ञानके साधनमें भगवान् निर्गुण, निराकार, निरंजन, परम अज्ञेयतत्त्व हैं और ज्ञानयुक्त कर्ममें भगवान् सर्वैश्वर्यसम्पन्न, सर्वगुणाधार, सर्वाश्रय, सर्वेश्वर, सृष्टिकर्ता, पालन और संहारकर्ता, नियन्त्रणकर्ता

प्रभु हैं, परंतु भक्तिमें भगवान् ये सब होते हुए ही भक्तके निजजन हैं। भक्ति विश्वातीत और गुणातीत तथा विश्वमय और सर्वगुणमय परमात्माका अवतरण कराकर, उन्हें नीचे उतारकर भक्तके साथ आत्मीयताके अत्यन्त मधुर बन्धनमें बाँध देती है। भक्तिका साधक—प्रेमी भक्त भगवान्‌को केवल सच्चिदानन्दघन ब्रह्म या सर्वलोक महेश्वर ऐश्वर्यमय स्वामी ही नहीं जानता, वह उन्हें अपने परम पिता, स्नेहमयी जननी, प्राणोपम सुहृद्, प्यारे सखा, प्राणेश्वर पति, प्रेममयी प्राणेश्वरी, जीवनाधार पुत्र आदि प्राणों-के-प्राण और जीवनों-के-जीवन परम आत्मीयरूपमें प्राप्त करता है। भगवान्‌के दिव्य स्नेह, अलौकिक प्रेम, अनुपमेय अनुग्रह, परम सुहृदता, अनिर्वचनीय दिव्य नित्य सौन्दर्य और नित्य नवीन माधुर्यका साक्षात्कार और उपभोग भक्तिके द्वारा ही किया जा सकता है, निरे ज्ञान और कर्मके द्वारा नहीं। जिनमें भक्ति नहीं है, उनकी तो कल्पनामें भी यह बात नहीं आ सकती कि भगवान् हमारे पिता-पुत्र, मित्र-बन्धु और जननी-पत्नी भी बन सकते हैं। इसी प्रेमरूपा भक्तिके प्रभावसे भगवान्‌के दिव्य अवतार होते हैं, इसीके प्रतापसे भक्त अपने भगवान्‌की दिव्य लीलाओंका आस्वादन करता है और इसीके कारण भगवान्‌को जगत्‌के सामने अपना महत्त्व छिपाकर परम गोपनीय भावसे भक्तके सामने अपने परम तत्त्वका अपने ही श्रीमुखसे प्रकाश करना पड़ता है। तर्कशील अभक्तोंके लिये यह तत्त्व सर्वथा गुप्त ही रहता है।

भगवान्‌का अपने प्रेमी भक्तोंके साथ बिलकुल खुला व्यवहार होता है; क्योंकि वहाँ योगमायाका आवरण हटाकर ही लीला करनी पड़ती है। उनके सामने सभी तत्त्वोंका प्रकाश हो जाता है। निर्गुण-निराकार दोनों ही रूपोंका परम रहस्य भगवान् खोल देते हैं। इसीलिये भगवान्‌ने भक्तिकी इतनी महिमा गायी है और इसीलिये परम चतुर ऋषि-मुनि भी भक्तिके लिये लालायित रहते हैं।

भगवान् इतना ही नहीं करते, वे स्वयं भक्तका योगक्षेम वहन करते हैं और उसके साथ खेलते हैं, खाते हैं, सोते हैं तथा प्रेमालाप करते हैं। कभी वे पुत्र बनकर गोदमें खेलते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

कभी राधाजीके साथ झूला झूलते हैं—

झूलत नागरि नागर लाल।
मंद मंद सब सखी झुलावति गावति गीत रसाल॥

कभी माता-पिताकी वन्दना और उसकी सेवा करते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

कहीं मित्रोंके साथ खेलते हैं, कहीं प्रियाके साथ प्रेमालाप करते हैं, कहीं भक्तके लिये रोते हैं। कहीं भक्तकी सेवा करते हैं, कहीं भक्तकी बड़ाई करते हैं, कहीं भक्तके शत्रुओंको अपना शत्रु बतलाते हैं, कहीं भक्तोंकी स्तुति सुनते हैं और कहीं भक्तोंको ज्ञान देते हैं। यह आनन्द भक्त और भगवान्‌में ही होता है। भक्त और भगवान्‌में न मालूम क्या-क्या रसकी बातें होती हैं, न मालूम कैसे-कैसे रहस्य खुलते हैं और न मालूम वे भक्तको कब किस परम दुर्लभ दिव्य लोकमें ले जाकर वहाँका आनन्द अनुभव कराते हैं। वे उसके हो जाते हैं और उसको अपना बना लेते हैं। उसके हृदयमें आप बसते हैं और उसको अपने हृदयमें बसा लेते हैं। सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, सम्पूर्ण आत्मानुभूति, सम्पूर्ण एकात्मबोध सब यहाँ दिव्य प्रेमके रूपमें परिणत हो जाते हैं और मुक्ति? मुक्ति तो ऐसे भक्तकी सेवा करनेके लिये पीछे-पीछे फिरती है, उसके चरणोंमें लोटती है—

यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा
विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥

'जिसकी श्रीमुकुन्दके चरणोंमें परमानन्दरूपा भक्ति होती है, मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणोंमें लोटती है।'

गाढ़ी कमाई

(श्रीकेशवनारायणजी अग्रवाल)

पुरानी बात है—उस समय भारतवर्ष धन-धान्यसे पूरित था। सर्वत्र दूधकी नदियाँ बहती थीं—'गरीबी' और 'बेरोजगारी' शब्द कोषमें ही पाये जाते थे। पास-पड़ोसके सभी देश सभ्यता तथा संस्कृतिमें उससे पिछड़े हुए थे। वे उसे कला-कौशलका भण्डार समझते थे और उससे विभिन्न कलाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेके हेतु अपने नवयुवकोंको भेजते थे। धनोपार्जनके हेतु भी दूर-पाससे लोग आते रहते—भारत किसीको विमुख न लौटाता था।

पश्चिमी सीमाप्रान्तके पड़ोसी देशके चार किसानोंने भारतमें अपना भाग्य आजमानेका निश्चय किया। उनके गाँवसे गुजरनेवाले राहगीर भारतकी समृद्धिकी गाथाएँ नित्य सुनाया करते थे और वे चारों मित्र थोड़े परिश्रमसे बहुत धन जोड़नेके इस प्रलोभनको बहुत कालतक न रोक सके और एक दिन वे चारों चल पड़े।

सीमाप्रान्तके निकटवर्ती पंचनद देशमें अपना कार्यक्षेत्र बनानेकी उन लोगोंने ठानी। पच्चीस दिनकी यात्रा पूरी करके वे एक वाणिज्य-व्यापारके केन्द्रमें पहुँचे, जहाँ चतुर्दिक् चहल-पहलसे जनसमुदाय समुद्रकी लहरोंकी भाँति हिलोरे लिया करता था। पहाड़ी देशके निवासी स्वभावत: मेहनती होते हैं—शीघ्र ही उन्हें अपनी रुचिके अनुकूल व्यवसाय मिल गया।

पहला मित्र चतुर और विवेकपूर्ण था। वह वस्तुका मूल्य आँकनेमें प्रवीण था। उसने एक सर्राफके यहाँ नौकरी की। मालिकके यहाँ कोठे-के-कोठे सोनेकी सिलोंसे भरे थे। उन्हीं सिलोंको नित्य निकालना, रखना, निहाईपर रखकर काटना, कसौटीपर कसना, यही काम उसे सिखाया गया और वह शीघ्र अपने काममें प्रवीण हो गया।

दूसरा मित्र एक रेजगारी या खैरीजके बेचनेवालेके यहाँ जा पहुँचा। चमकते हुए नये ताँबेके पैसोंकी चमक और झंकारसे उसकी आँखें और कान मुग्ध हो गये और वह उसीके यहाँ नौकर हो गया। उसके मालिककी दूकान नगरके प्रधान देवालयके समीप थी। वहाँ झुण्ड-के-झुण्ड यात्री आते, जो तीर्थ-पुरोहितोंकी दक्षिणाके हेतु रुपयोंके बदले छोटी खैरीज लेते थे और उसके व्यवसायको सदा चलता रखते थे। राजाके खजानेसे थोड़ी-सी मुहर और रुपयोंके बदले ढेर-के-ढेर पैसे और छोटी खैरीज लाना उसका काम था। थोड़े दिनों बाद पैसोंको गिनकर ढेरी लगाना उसे सिखाया गया। अपने काममें उसका खूब मन लग गया।

तीसरा मित्र कसरती जवान था। उसके बलिष्ठ पुट्ठे मेहनतका काम खोजते थे। वह एक गल्ला अनाजके व्यापारीके यहाँ जा पहुँचा। उसके बलिष्ठ शरीरको देखकर उस व्यापारीने तुरंत उसे कामपर रख लिया। सैकड़ों बोरे गाड़ियोंसे उतारकर गोदाममें रखना, गोदामसे निकालकर गाड़ियोंपर लादना उसका काम था और उसे इसमें बड़ा आनन्द आता था।

चौथा मित्र शरीरका स्थूल था और बुद्धि भी उसकी स्थूल ही थी। उसने एक शाकभाजीके व्यवसायीके यहाँ नौकरी की। सैकड़ों बीघे खेतोंमें मालिककी तरकारियाँ लहलहाती थीं। जिधर निगाह जाती, उधर उसके हरे-भरे खेत लहलहाते थे। बस, इसका यही काम था कि नित्य गाड़ी भरकर तरकारी लाये और शहरमें बेचकर पैसे खड़े करे।

चारों मित्र खूब मेहनतसे काम करने लगे और कुछ कालके लिये अपने पहाड़ी गाँवको भूल ही गये। थोड़े खर्चमें उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जातीं और शेष धन संचित होनेके लिये बच रहता। चारों मित्र मन लगाकर संचय करने लगे।

पहला मित्र रात-दिन सोनेके बीच रहता था।

वह देखता था कि कितना थोड़ा सोना अपनेसे सैकड़ों गुनी बड़ी चीजोंको खरीद सकता है। वे चमकते हुए गोल सिक्के अपने नामको सार्थक करते हुए हर एकके मनपर अपनी मुहर लगा देते थे। बस, उसने अपनी कमाई मुहरोंके रूपमें ही संचित करनेका निश्चय किया।

दूसरा मित्र नित्य खजानेसे पैसोंके ढेर-के-ढेर लाता और उन्हें दूकानके पक्के फर्शपर उड़ेलता तो उनकी चमक और झंकार उसे वीणाके रागका मजा देती। जब वह चार अंगुल ऊँची पैसोंकी ढेरियाँ चुनकर ताँबेका फर्श बिछा देता तो उसके नेत्र हर्षसे चमक उठते। वह अपनी कमाई स्वभावत: पैसोंके रूपमें इकट्ठी करने लगा। शीघ्रतासे बढ़नेवाला पैसोंका ढेर उसके आनन्दको बढ़ानेका साधन बन गया।

तीसरा मित्र बड़ा परिश्रमी था। जबतक वह दो-चार सौ बोरे इधरसे उधर न रख लेता तबतक उसे अच्छी नींद न आती। पर्याप्त परिश्रमसे जब उसके अंग थक जाते तो वह खूब तानकर भोजन करता और हजारों बोरोंकी ऊँची मचानपर अपने शिथिल शरीरको स्वतन्त्रतापूर्वक फैलाकर गहरी निद्राका आनन्द लूटता। कल्पना अपने पंख फैलाकर उसे अपने साम्राज्यमें सैर करनेको निमन्त्रित करती और वह अपने आपको थोड़ी देरके लिये उस अन्नसमूहका स्वामी समझने लगता। गर्वसे उसकी छाती फूल जाती और वह उस दिनका स्वप्न देखता जब अनाजसे लदे हुए ऊँटोंकी लम्बी पाँत उसके पीछे-पीछे चलती होगी और वह मुसकराता हुआ अपने गाँवमें प्रवेश करेगा। बस, उसकी कमाई अनाजके बोरोंकी शक्लमें एक किरायेके कोठेमें इकट्ठी होने लगी।

चौथा मित्र नित्य गाड़ियाँ भर-भरकर तरकारियाँ नगरमें लाता और सन्ध्यातक उसके रुपये बनाकर वापस लौटता। उस समयके हिसाबसे एक गाड़ी आलू दस रुपयेमें बिक जाते—एक गाड़ी बैगन, कुम्हड़ा, लौकीके पाँच-छ: रुपये खड़े होते तो एक गाड़ी पालक, मैथी आदि शाकोंके दो-तीन रुपये ही वसूल होते। लौटते समय निशाकी फैलती हुई चादरके नीचे जब उसकी खाली गाड़ियाँ घड़-घड़ शब्द करती हुई तेजीसे लौटतीं तो वह अपने मनसूबे बनाया करता और प्रतिमास बचनेवाले वेतनको संचय करनेका उपयुक्त माध्यम सोचता। उसके दिमागमें भिन्न-भिन्न तरकारियोंका मूल्य घूमा करता। वह सोचता—'एक गाड़ी पालक दो रुपयेमें मिलती है। हमारे गाँवमें किसीने इसका नाम भी नहीं सुना। सालभरकी कमाईमें एक गोदाम पालकसे भर जायगा। कुछ लौकी, बैगन, कुम्हड़ा, आलू भी ले लूँगा—जब घर लौटूँगा तो कोड़ियों गाड़ी भरकर कमाई लाद ले चलूँगा। गाँववाले आँखें फाड़-फाड़कर देखेंगे—ओह! मैं कैसा सौभाग्यशाली समझा जाऊँगा।' बस, उसने एक बड़ा-सा हाता किरायेपर लिया और उसमें पालकके सागसे कोठरियाँ भरने लगा।

कभी-कभी चारों मित्र इकट्ठे होते तो कमाईपर बात चलती। पहला मित्र कह देता—'मेरी कमाई तो मेरी मुट्ठीमें है।' तीनों मित्र उसकी बातपर हँसते और उसे निकम्मा, फजूलखर्च अथवा झूठा समझते।

दूसरा मित्र कहता—'मेरी कमाई गठरियोंमें झनझनाती है। जब मैं गाँव पहुँचूँगा तो अपनी कमाई पटेलके फर्शपर उड़ेल दूँगा—सारे गाँवमें झंकार गूँज जायगी और साथ ही मेरी कीर्ति भी चतुर्दिक् गूँज उठेगी।'—और वह हर्षसे नेत्र मूँद लेता।

तीसरा मित्र इसपर हँस देता और कहता—'बस, तुम्हारी कमाई गठरियोंतक ही सीमित है—अरे, मेरी कमाई बोरोंकी थाकोंमें भरी रखी है। जब मैं घर लौटूँगा तो मेरे पीछे एक कोड़ी ऊँट पाँत बाँधकर चलेंगे। महीनोंतक यही चर्चा गाँवमें रहेगी और लड़के खेलमें मेरी नकल किया करेंगे।'—और उसका बलिष्ठ शरीर चार अंगुल फूल जाता।

चौथा मित्र ठहाका मारकर हँसता और फड़ककर कहता—'बड़ी शेखी हाँकते हो। अरे, मेरी कमाईसे गोदाम भर रहे हैं और जब मैं गाँव लौटूँगा तो मेरे पीछे बीस, चालीस, साठ—नहीं-नहीं अस्सी गाड़ियोंकी बारात चलेगी। गाँवके फाटकसे चौपालतक मेरी गाड़ियाँ-ही-गाड़ियाँ दिखायी देंगी। क्या इस दृश्यको गाँववाले सहजमें भूल जायेंगे—इसकी गाथा नाती-पोतोंतक पहुँचेगी और स्त्रियाँ इसके गीत बना-बनाकर गायेंगी।'—और वह हर्षसे उछल पड़ता।

एक-दूसरेकी बातोंपर कोई आश्चर्य करता, कोई ईर्ष्या करता, कोई मूर्ख समझता। अपना असली भेद कोई किसीको न बताता।

हँसी-खुशीके दस वर्ष यों ही सहजमें बीत गये। एक दिन चारों मित्र नदीतटपर एकत्रित होकर गोष्ठी कर रहे थे। बात-ही-बातमें घरकी स्मृतिपर चर्चा चल पड़ी। गोदके बच्चे अब बड़े हुए होंगे—बड़े बच्चे अब युवा होकर घरका काम सम्हालते होंगे। पतिप्राणा स्त्रियाँ नित्य बाट देखती होंगी—स्नेही मित्र अधिक समय बीतनेके कारण चिन्तित होंगे—बूढ़े माँ-बाप रो-रोकर व्याकुल होते होंगे। बस, मित्रोंका एकत्रित विचारप्रवाह एक प्रबल धारामें बह निकला और उसकी तेज धारने उनके पैर उखाड़ दिये। उन्होंने मिलकर यही निश्चय किया कि अब शीघ्र ही घर लौट चलना चाहिये। शीघ्र ही एक शुभ दिन नियत किया गया और नगरके बाहर एक स्थानपर सब मित्रोंने उस दिन प्रात:काल मिलनेका वचन दिया।

आखिर वह दिन भी आ गया। दस वर्षमें नये मित्रोंसे मोहबन्धन बँध चुके थे। उनके विछोहने घर लौटनेके आनन्दको क्षणभरके लिये दबा दिया, परंतु एक बार नगरका फाटक पार करनेपर जब घर लौटनेका मार्ग नेत्रोंके सामने दूरतक फैला हुआ दिखायी दिया तो प्रियजनोंसे पुन: मिलनका आह्लाद उनके पैरोंकी गतिको तीव्र करने लगा।

पहला मित्र मुसकराता हुआ प्रसन्नचित्त आ रहा था—उसके साथ गठरी-पोटली कुछ न थी। उसे खाली हाथ देखकर अन्य मित्र हँस पड़े—'वाह जी! दस वर्ष बाद घर लौटने चले, सो भी खाली हाथ—अपने स्त्री-बच्चोंकी दस वर्षकी कमाईके लिये लालायित दृष्टिके सामने रखनेके लिये आपके पास क्या है जनाब!' पहले मित्रने लापरवाहीसे हँसते हुए उत्तर दिया—'आप अपना घर सम्हालिये—मेरी कमाई मेरे साथ है।'

दूसरा मित्र अपनी कमाईको एक घोड़ेपर लादकर लाया था। घोड़ेको हाँकनेके बहाने जब वह अपना बेंत पैसोंकी गठरीमें मार देता तो पैसोंकी झंकार उसके मुखमण्डलपर हँसीकी रेखा ला देती।

तीसरा मित्र मिलनेके स्थानपर पहलेसे ही आ गया था। उसके साथ बारह ऊँट अनाजके बोरोंसे लदे हुए थे। वह सूखी हँसी हँसकर कहने लगा—'क्या कहूँ मित्र! आज मेरे साथ सोलह ऊँट होते, परंतु चार ऊँटोंका अनाज हरामखोर मूसोंके पेटमें चला गया। फिर भी मैं तुम दोनोंसे तो अच्छा ही हूँ।'

चौथा मित्र अभीतक नहीं आया था। तीनों मित्र नियत स्थानपर बैठकर उसकी बाट देख रहे थे और उसके न आनेके विषयमें अटकल लगा रहे थे, तबतक दूरपर उन्हें बैलगाड़ियोंकी एक पाँत-सी आती दिखायी दी। पास आनेपर उन्होंने पहचाना कि वे उनके मित्रके साथ आनेवाली गाड़ियाँ हैं। पच्चीस गाड़ियोंके आगे-आगे चौथा मित्र रोनी सूरत लिये आ रहा था। मित्रोंने हँसकर उसका स्वागत किया तो वह रो उठा। तीनों मित्रोंने अचरजसे पूछा—'क्या हुआ भाई? कुशल तो है? क्या मालिकने कुछ बेईमानी की?'

चौथे मित्रने आँसू पोंछते हुए कहा—'नहीं मित्र! मालिकने कोई बेईमानी नहीं की—वरं उन्होंने तो बिदाईमें पाँच गाड़ी आलू दिये हैं। शेष बीस गाड़ी जो आप देखते हैं, वे अस्सी गाड़ी सम्पत्तिका बचा-खुचा

भाग है। क्या करूँ मेरी तकदीर ही फूट गयी, जो मेरी कमाईका तीन चौथाई भाग अकारथ गया।'—उसकी आँखोंसे टपाटप आँसू गिरने लगे।

उसने साँस खींचकर फिर कहा—'मुझे दुःख तो इस बातका है कि मैंने जिसे बड़े लाड़चावसे रखा था, उसीने अन्तमें मुझे धोखा दिया—ओह! मैंने पालकके सागको बरसोंसे कोठोंमें आजके दिनके लिये रखा था—परंतु चालीस कोठोंमेंसे आज एक पत्ती भी हाथ न लगी—जिसे खोला, उसमें बदबूके कारण खड़ा होना कठिन हो गया। फिर उन चालीस कोठोंके किरायेके लिये मुझे बीस गाड़ी आलू देने पड़े।' वह माथा ठोंककर फिर रोने लगा।

तीनों मित्रोंने उसे समझा-बुझाकर शान्त किया और जब उसे यह बताया कि इतना कम होनेपर भी उसके पास अब भी सबसे अधिक सम्पत्ति है तो उसके चेहरेपर हँसीकी रेखा आ गयी और स्पर्धाकी भावनाने उसके दुःखको भुला दिया।

बस, चारों मित्र प्रसन्नहृदय घरकी ओर जानेवाले मार्गपर अग्रसर होने लगे। सन्ध्या होते-होते वे पहले पड़ावपर जा पहुँचे। पहला मित्र बेफिक्रीसे भोजन करके आरामसे जा सोया। दूसरे मित्रको अपने घोड़े और साईसके लिये चारा-दाना और भोजन खरीदनेके लिये पैसोंकी गठरी खोलनी पड़ी और दो मुट्ठी सम्पत्ति कम करनी पड़ी। तीसरे मित्रको बारह ऊँट और उनके बारह हँकवानोंके भोजनके निमित्त एक बोरा अनाज पड़ाववालेके हाथ बेचना पड़ा। चौथे मित्रको पच्चीस गाड़ीवान तथा पचास बैलोंके भोजनके लिये दो गाड़ी आलू बेचना पड़ा और दो गाड़ी आलूके साथ उसका एक सेर खून सूख गया। प्रातःकाल जब उसकी दो खाली गाड़ियाँ गाँवकी ओर चलनेके बजाय नगरकी ओर लौटने लगीं तो वह विक्षिप्तकी भाँति टकटकी बाँधकर उनकी ओर देखता रह गया।

इसी तरह नित्य सन्ध्यासमय जब पड़ाव आता तो पहले मित्रको छोड़कर शेष तीनों मित्रोंकी सम्पत्ति क्रमशः कम होती, पहले मित्रकी सम्पत्ति किसीको न तो दिखायी ही देती न उसके घटनेका ही कुछ अनुमान होता। हर तीसरे-चौथे दिन एक खाली ऊँट लौटता और बैलगाड़ी तो दो-एक हर रोज ही लौटती थीं। पैसोंकी गठरियाँ अब ढीली पड़ती जाती थीं और यद्यपि अब उनमेंसे खूब झंकार निकलती थी, परंतु वह झंकार अब सम्पत्ति घटनेकी द्योतक होनेके कारण कानोंको प्यारी नहीं मालूम देती थी। ज्यों-ज्यों रास्ता कटता पहले मित्रकी प्रसन्नता बढ़ती जाती, परंतु शेष तीनों मित्रोंकी चिन्ता उसी मात्रामें बढ़ती जाती।

अब घर पहुँचनेके लिये पाँच दिनका रास्ता शेष था। अभीतक समतल भूमिपर होकर रास्ता जाता था, परंतु अब शेष पाँच दिनका मार्ग पहाड़ी भूमिपर होकर था। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ मानो रास्ता रोके खड़े हुए थे। पगडंडीका सहारा लेकर चलना था। पहला मित्र तो स्वतन्त्रतापूर्वक पगडंडीके मार्गपर चढ़ने लगा। उसके पैर पहाड़ी भूमिका स्पर्श करते ही अधिक तेजीसे उठने लगे और उसके ओंठोंसे स्वतन्त्रताका मधुर राग निकलने लगा।

दूसरे मित्रका बोझा पहले आधा रह गया था। उसका घोड़ा कोई पहाड़ी टट्टू तो था नहीं, फिर भी धीरे-धीरे आगे बढ़ा। तीसरे मित्रके पास अब छः ऊँट शेष थे, परंतु उनमेंसे एक भी एक कदम आगे बढ़नेमें असमर्थ था। आखिर उसने एक बोरा अनाज अपनी पीठपर उठाया और पहाड़ी मार्गपर अग्रसर हुआ, परंतु उसे शीघ्र ही यह पता चल गया कि गोदामसे गाड़ीपर बोरे लादना और पहाड़पर बोरा लेकर चढ़ना दो भिन्न काम हैं। सौ कदम चढ़ना उसके लिये कठिन हो गया और वह बोरा पटककर बैठ गया। अन्तमें उसने एक गठरीमें अनाज बाँध लिया और सरपर रखकर चल दिया।

चौथा मित्र नित्य खाली गाड़ियाँ लौटती देख-

देखकर विषादसे जलता रहता था। उसके शरीरमें रक्त तो मानो रहा ही न था। जब वह पहाड़के निकट पहुँचा तो उसके साथ केवल एक गाड़ी रह गयी थी, जो पहाड़ी मार्गपर एक कदम आगे नहीं चल सकती थी। उसने तीसरे मित्रको एक बोरा अनाज पीठपर लादकर चढ़ते देखा तो वह भी एक बोरा आलू लेकर चलनेको प्रस्तुत हुआ, परंतु कमजोरीसे काँपते हुए पैर शरीरके बोझको भी पहाड़ी मार्गपर कठिनाईसे ले चल सकते थे। उसका हठ पूरा करनेके लिये गाड़ीवानने एक बोरा उसकी पीठपर चढ़ाया तो वह इस बुरी तरह गिरा कि यदि भगवान् रक्षा न करते तो वहीं उसका प्राणान्त हो जाता। हताश और खिन्नचित्त वह खाली हाथ पहाड़पर चढ़ने लगा। पहला मित्र उसे तथा तीसरे मित्रको बारी-बारीसे सहारा देता चलता था। दूसरे मित्रका घोड़ा भी दूसरे दिन आगे न बढ़ सका और उसे भी अपनी गठरी खोलकर एक पोटली पैसे बाँधने पड़े। पैसोंकी झंकार सुननेकी अन्तिम अभिलाषा पूरी करनेके लिये उसने शेष पैसोंमेंसे कुछ तो घोड़ेवालेको दिये और बाकी सब पहाड़परसे नीचे उड़ेल दिये जो झंकार करते हुए शीघ्र अदृष्ट हो गये।

आखिर वह शुभ दिन आया, जब चारों मित्रोंने अपने गाँवमें प्रवेश किया। उनके आनेकी खबर गाँवमें विद्युत्-गतिसे फैल गयी। गाँवके बालक, युवा, वृद्ध सब मुखियाकी चौपालमें एकत्रित हो गये और बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया। कुशल-प्रश्न और इधर-उधरकी बातोंके बाद मुखियाने कमाईकी बात छेड़ी। पहले मित्रका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा—उसने अपनी कमरसे बसनी खोली और पचास चमकती हुई अशरफियाँ फर्शपर उड़ेल दीं। गाँववालोंके मुँहसे एक साथ 'शाबास' निकल पड़ा। दूसरे मित्रने सूखी हँसी हँसकर अपनी पोटली खोली और समयके प्रभावसे काले पड़े हुए पैसोंका ढेर सामने लगा दिया। गाँववाले चुप्पी साधकर रह गये। तीसरे मित्रने दुखी चित्तसे अपनी अनाजकी गठरी खोलकर ज्यों ही फर्शपर उड़ेली, त्यों ही उसमेंसे उड़नेवाली धूल गाँववालोंके नथुनोंमें घुसने लगी और सब लोगोंने उधरसे मुँह फेर लिया और चौथा मित्र क्लान्त और थका हुआ, आत्मग्लानिकी अग्निसे धधकता हुआ, गाँववालोंके सामने पछाड़ खाकर गिर पड़ा और उसके मुँहसे एक चुल्लू रक्त फर्शपर निकल पड़ा। वही रक्त अपनी कमाईरूपमें रखकर उसके प्राणपखेरू शरीर छोड़कर उड़ गये!

नोट—चारों मित्र सत्, सत्+रजस्, रजस्+तमस्, और तमस् हैं। पहाड़ी प्रदेशका गाँव आत्माका निवासस्थान है और पंचनद देशका नगर पांचभौतिक शरीर है। नगरसे लौटकर घर आना शरीर त्यागकर आत्माका लौटना है। सत्की कमाई भूलोकमें लोगोंपर प्रकट नहीं होती, परंतु वह अक्षतरूपमें आत्माके साथ सत्यलोकतक जाती है। सत्+रजस्की कमाई उन पुण्योंके रूपमें होती है, जो मनुष्य यश और कीर्तिके लिये करता है—उसके कान सदा प्रशंसारूपी झंकारको सुननेके लिये लालायित रहते हैं। ऐसी कमाई अपनी चमक खो देती है और स्वर्गके आगे उसकी गति नहीं होती। रजस्+तमस्की कमाई अधिकतर मार्गमें ही व्यय हो जाती है और संकेतमात्रमें ऊपरके लोकोंमें पहुँच सकती है—भुवर्लोकके आगे उसकी गति नहीं होती। तमस्की कमाई तीन चौथाई मृत्युके पहले ही नष्ट हो जाती है और शेष मार्गमें समाप्त हो जाती है। ऐसी कमाई मृत्युके उपरान्त चिन्ता तथा सन्तापका कारण बनती है और ऐसे मनुष्यकी आत्मा केवल हाजिरी देकर तुरंत भूलोकको लौट आती है। समय रहते हम सबको सोच लेना चाहिये कि हमारी कमाई किस ओर जा रही है—अन्तमें पछताने और पछाड़ खाकर गिरनेसे क्या होगा?

साधकोंके प्रति—

[एक निश्चयकी महिमा]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंका ऐसा निश्चय भी नहीं होता कि हमें परमात्माकी प्राप्ति करनी है, फिर उन्हें तत्त्वकी प्राप्ति होना तो बहुत दूरकी बात है—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २।४४)

यत्न करते हुए भी वे इस परमात्मतत्त्वको नहीं जान सकते—'**यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः॥**' (गीता १५।११) कबतक? जबतक कि भोग और संग्रहमें आसक्ति है अर्थात् जबतक सांसारिक पदार्थोंसे सुख लेते रहें और रुपयोंका संग्रह बना रहे—ये भावनाएँ भीतरमें बनी हैं, तबतक परमात्मतत्त्वको स्पर्श नहीं कर सकते और परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति ही करना है—ऐसा उनका निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि उनके हृदयमें परमात्माके स्थानपर धन और भोग आकर बैठ गये हैं। 'सुख भोगना है और सुख-भोगके लिये संग्रहकी आवश्यकता है'—यह संग्रह और भोगकी रुचि बहुत घातक है। धनका उपयोग अपने और औरोंके निर्वाहके लिये खर्च करनेमें है और धनका संग्रह तो केवल पतन करनेवाला है। संग्रह करनेकी जो रुचि है कि मेरे पास इतनी वस्तुएँ हो जायँ, इतने रुपये हो जायँ—यह बहुत ही बाधक है।

रुपयों और पदार्थोंके संग्रहकी रुचिकी तो बात ही क्या है। पढ़ाई करके ज्ञान अधिक संग्रह कर लूँ, बहुत पढ़ाई कर लूँ, बहुत शास्त्र पढ़ लूँ, इस प्रकार पढ़ाईके संग्रहकी भावना जबतक रहेगी, तबतक मनुष्य परमात्मतत्त्वको जान नहीं सकता और उसकी प्राप्तिके विषयमें निश्चय भी नहीं कर सकता। जो अपना कल्याण चाहता है, उसकी बुद्धि एक ही होती है, उसका एक ही निश्चय होता है कि 'हमें तो परमात्मतत्त्वको ही प्राप्त करना है और यही हमारे जीवनका ध्येय है।'

जिनका ऐसा एक निश्चय नहीं है, जो संसारके भोग और संग्रहमें आसक्त हैं, उनकी बहुत बुद्धियाँ होती हैं और वे बुद्धियाँ भी अनन्त शाखाओंवाली होती हैं अर्थात् उनकी बुद्धियाँ भी अनन्त होती हैं और एक-एक बुद्धिकी शाखा भी अनन्त होती है। जैसे—पुत्र मिले, यह एक बुद्धि हुई और पुत्र-प्राप्तिके लिये किस औषधका सेवन करें। किस मन्त्रका अथवा किस जप आदिका अनुष्ठान करें अथवा किस संतका आशीर्वाद लें अथवा और कहाँकी यात्रा करें, जिससे पुत्रकी प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि पुत्रकी प्राप्ति, यह तो एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके अनेक उपाय उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। इसी तरह धनकी प्राप्ति एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके लिये व्यापार करना, नौकरी करना, चोरी करना, डाका डालना, ठगाई करना, धोखा देना आदि उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। ऐसे पुरुषोंका परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं हो सकता।

गीताजीमें भगवान्‌ने परमात्माकी प्राप्ति-विषयक एक निश्चयकी बड़ी भारी महिमा गायी है। इतनी विलक्षण महिमा बतायी है कि जिसकी महिमा कही नहीं जा सकती। '**अपि चेत्सुदुराचारः**'—सांगोपांग दुराचारी, जिसके दुराचरणमें कोई कमी नहीं है। जो झूठ, कपट, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण, वेश्या-गमन, जूआ खेलना, चोरी, व्यभिचार आदि जितने दुराचार सम्भव हैं, सब करनेवाला है। ऐसा पुरुष भी यदि परमात्माकी ओर ही चलनेका निश्चय कर ले तो भगवान् कहते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये—

'साधुरेव स मन्तव्यः।'

ऐसे दुराचारीको साधु क्यों मानना चाहिये? भगवान् आज्ञा देते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** (गीता ९।३०) 'उसने परमात्माकी प्राप्तिका एक निश्चय कर लिया है।' अब उस निश्चयके अनुसार उसका जीवन धार्मिक हो जायगा। उसका एक लक्ष्य बन गया, एक ध्येय बन गया कि अब कुछ भी हो जाय, एक भगवत्प्राप्ति ही करनी है। ऐसे पुरुषको **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** (जिसने अपने जीवनका लक्ष्य भलीभाँति निश्चित कर लिया है) कहते हैं।

एक प्रश्न उठता है कि भोग और ऐश्वर्यके संग्रहमें जो आसक्त हैं, उनका तो परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं हो सकता और पापी-से-पापी भी ऐसा निश्चय कर सकता है—इन दोनों बातोंमें विरोध प्रतीत होता है। बात ठीक है। इसीलिये **'अपि चेत्'** पद श्लोकमें आये हैं। साधारणतया पापी लोगोंकी भजनमें रुचि नहीं होती—**'न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।'** (गीता ७।१५) पापी लोग मेरा भजन नहीं करते, यह सामान्य बात है; परंतु यदि पापी भी भजनका निश्चय कर ले, तो इस निश्चयके आधारपर उसे साधु ही मानना चाहिये। भगवान्ने ऐसा कहा है।

बात यह है कि पाप करनेकी भावना रहते हुए ऐसा निश्चय नहीं होता, यह ठीक है, परंतु जीवमात्र भगवान्का अंश है और तत्त्वतः निर्दोष है। संसारकी आसक्तिके कारण उसमें दोष आये हैं। यदि उसके मनमें पापोंसे घृणा होकर किसी तरह यह जँच जाय कि भगवान्का भजन ही श्रेष्ठ है, तो वह बहुत शीघ्र धर्मात्मा बन जाता है।

मनुष्यमें जहाँ संसारकी कामना है, वहीं उसमें भगवान्की ओर चलनेकी रुचि भी है। यदि भगवान्को प्राप्त करनेकी रुचि जम जाय, तो फिर कामना नष्ट होकर भगवत्प्राप्तिमें देरी नहीं लग सकती। यह मानवके विवेककी महिमा है। यह सत्य है कि प्रायः पापियोंका ऐसा निश्चय हुआ नहीं करता; परंतु ऐसा नहीं है कि पापी ऐसा निश्चय नहीं कर सकते। महान्-से-महान् पापी अपना उद्धार कर सकता है। जबतक मृत्युकाल नहीं आया है, तबतक इस मनुष्यमें यह शक्ति है कि वह भगवत्प्राप्तिका निश्चय कर सकता है; परंतु भोगोंका, धनका महत्त्व हृदयमें रहते हुए परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय नहीं कर सकता।

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि किये हुए पाप मनुष्यको भगवान्की ओर जानेमें नहीं रोक रहे हैं। इसी तरह सांसारिक पदार्थ भी भगवान्की ओर जानेमें नहीं रोक रहे हैं, परंतु वर्तमानमें भोगोंका जो महत्त्व अन्तःकरणमें बैठा हुआ है, वह बाधा दे रहा है। भोग उतना नहीं अटकाते, जितना भोगोंका महत्त्व अटकाता है। अटकानेमें आपकी रुचि—नीयत प्रधान है। पापीने पाप बहुत किये; परंतु अब उसकी रुचि—नीयत पाप करनेकी नहीं रही। अब उसने निश्चय कर लिया। एक परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है। इसलिये उसे 'धर्मात्मा' बनते देर नहीं लगती, परमात्माकी प्राप्ति होनेमें देरी नहीं लगती; क्योंकि मनुष्य स्वयं परमात्माका अंश है।

यदि भोग और संग्रहकी रुचिको रखते हुए परमात्माकी प्राप्ति करना चाहें तो परमात्माकी प्राप्ति तो दूर रही, उनकी प्राप्तिका एक निश्चय भी नहीं हो सकता। कारण कि जहाँ भोगोंकी रुचि है, वहीं परमात्माकी रुचि है। रुचि जबतक भोग-संग्रहमें है, मान, बड़ाई, आराममें है, तबतक कोई भी परमात्मामें नहीं लग सकता; क्योंकि उसका चित्त भोगोंकी रुचिद्वारा हरा गया। जो शक्ति थी, वह भोग और ऐश्वर्यमें लग गयी। भोग और संग्रहमें मनुष्यको मिलेगा कुछ नहीं, प्रत्युत वह परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जायगा। धोखा हो जायगा धोखा! मान-बड़ाई कितने दिन रहेगी? मान-बड़ाई मिलकर भी क्या निहाल करेगी?

भोग कितने दिन भोगेंगे? संग्रह कितने दिन रहेगा? यहाँ खूब धन इकट्ठा किया, पर यदि आज आयु समाप्त हो गयी तो आज ही मर जाओगे, धन यहीं रह जायगा और परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जाओगे।

इसलिये भगवान्के कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि परमात्माकी प्राप्ति वास्तवमें चाहते हो, तो भोग और संग्रहको महत्त्व मत दो। आजकल तो खर्चके लिये ही रुपयोंका महत्त्व नहीं, अपितु उनकी संख्याको महत्त्व दे रहे हैं। हम लखपति हो जायँ, हमारे पास इतना संग्रह हो जाय। पासमें रुपया है पर उसे खानेमें खर्च नहीं कर सकते, अच्छे काममें खर्च नहीं कर सकते। केवल एक धुन धन जोड़नेकी लगी हुई है—'संख्या कम न हो जाय।' मूलधनमें कम-से-कम एक लाख रुपया तो इस साल जमा हो जाय, ऐसी रुचि रहती है। लड़कोंको उपदेश देते हैं कि 'रुपया जोड़ो! जोड़ो नहीं, तो कमाओ, उतना खाओ! मूल पूँजी खर्च करते हो? तुममें बुद्धि नहीं है।' मूल खर्च करते दुःख होता है तो मूलमें क्या तूली लगाओगे? खर्च नहीं करोगे तो क्या करोगे?

सज्जनो! यह संग्रहकी वृत्ति नरकोंमें ले जानेवाली है। माँ-बाप बूढ़े हो जाते हैं तो वे लड़कोंको समझाते हैं कि 'तुमलोग बुद्धिहीन हो। मूलधन खर्च करते हो? इस मूलधनको मत छेड़ो। जितना कमाओ उतना खर्च कर लो, पर मूलधन कम मत करो।' ऐसे पुरुष परमात्माकी प्राप्ति कर ही नहीं सकते। साधु हो, गृहस्थ हो, पढ़ा-लिखा हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, भाई हो, चाहे बहन हो, जबतक संग्रह करनेकी तथा संग्रह बना रहे—यह रुचि रहेगी, तबतक वे परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें नहीं चल सकते। यदि आपके भीतर और संग्रहकी रुचि नहीं है तो आपके पास चाहे लाखों-करोड़ों रुपये हैं, पर वे आपको अटका नहीं सकते। बैंकोंमें बहुत धन पड़ा है, शहरमें बहुत मकान हैं; पर वे हमें नहीं अटकाते। क्यों नहीं अटकाते? क्योंकि उनमें हमारी ममता नहीं है तथा उनकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं है। यदि उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हो जायगी तो उनमें हम फँस जायँगे।

हमारा बन्धन कहाँ है? जितने धनमें हमने ममता की है, वही तो बाँधनेवाला है। संसारमात्रसे हमारी मुक्ति स्वतः है। दस-बीस आदमियोंको, जिन्हें हमने अपना मान रखा है, वही बन्धन है। लाख-दो लाख रुपयोंको हमने अपना मान रखा है, मकानको अपना मान रखा है, वही फँसावट है। हमने जिन्हें अपना नहीं माना है, वे मनुष्य मर जायँ, उन्हें कुछ भी हो जाय, तो हमारे चित्तपर कुछ असर नहीं पड़ता। जिन मकानोंको हमने अपना नहीं माना, वे सब-के-सब धराशायी हो जायँ तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता। जिन रुपयोंको हमने अपना नहीं माना, वे चले जायँ, लाखों-करोड़ोंकी उथल-पुथल हो जाय तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि उनमें हम बँधे हुए नहीं हैं। सारे संसारसे आपको बन्धन नहीं है। आपने इन थोड़ोंको जो अपना मान रखा है, यदि इनकी ममताका भी आप त्याग कर दें तो निहाल हो जायँगे। अधिक बन्धन नहीं है। अधिक-सा बन्धन तो छूटा हुआ है ही अर्थात् जिनमें आपकी ममता नहीं, उनसे आप मुक्त हैं ही। जिनमें आप ममता करते हैं, उनमें आप बँध जाते हैं।

मनुष्योंमें ऐसी ही चाल है कि वे अधिक व्यक्तियोंमें, पदार्थोंमें ममता करना चाहते हैं। वक्ता भी चाहता है कि श्रोता अधिक आ जायँ। यदि ऐसी इच्छा नहीं रखेंगे तो फँसेंगे कैसे? वे भी फँसनेकी तैयारी करते रहते हैं। इसी प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने क्षेत्रमें अधिक-से-अधिक भोग मिल जाय—यह चाहते रहते हैं, पर अधिक चाहनेसे मिलता नहीं। यदि मिल जाय तो टिकेगा नहीं और वह यदि टिकेगा भी, तो आप नहीं टिक सकेंगे। इस तरह आप फँसे ही रहेंगे, मरनेके बाद भी आप छूट सकेंगे नहीं।

मैं-मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कब तक निबाहे रामजी, रुई लपेटी आग॥

जैसे रुईमें लपेटी आग कितने दिन ठहरेगी? वह तो जलायेगी ही। ऐसे ही जिन पदार्थोंमें 'मैं और मेरापन' करते हो, वे कितने दिन ठहरेंगे? आप सम्बन्ध रखेंगे तो बँध ही जायँगे। इसलिये प्रत्येक भाई-बहनके लिये बहुत आवश्यक है कि वे संसारके भोगोंको और उनके संग्रहकी इच्छाको भीतरसे त्याग दें।

भीतरसे पदार्थोंकी इच्छा छोड़ देनेपर पदार्थ प्रारब्धानुसार स्वतः आते हैं। चाहनासे पदार्थोंके मिलनेमें आड़ लगती है। अपनी चाहनाका त्याग होनेसे आपकी आवश्यकता सर्वत्र फैलती है। लोगोंके मनमें आपकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वतः प्रेरणा होती है। हमारे चाहना रखते हुए हमारी इच्छा हममें सीमित हो जाती है और मिलनेमें आड़ लग जाती है। चाहना रखते हुए जब हमें धन, मकान मिलता है, तब हम अपनेको सफल मानते हैं; चाहनाका त्याग कर देनेपर वस्तुएँ खुली आयेंगी और हमारी सेवामें लगकर सफल होंगी।

परमात्म-तत्त्वमें नित्य-निरन्तर स्थिति चाहते हैं तो उत्पत्ति-विनाशवाली वस्तुओंका आकर्षण सर्वथा मिटाइये। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंमें फँसे रहेंगे, तो अनुत्पन्न तत्त्व नहीं मिलेगा। सदा साथमें रहता हुआ परमात्मा नहीं मिलेगा। उससे वंचित रह जायँगे। भोग और संग्रहकी रुचि रखेंगे तो परमात्मासे वंचित रहनेके सिवाय अन्य कुछ लाभ नहीं होगा। धन भी नहीं मिलेगा। यदि मिलेगा भी तो रहेगा नहीं। न भोग मिलेंगे। यदि मिलेंगे तो वे रहेंगे नहीं और न आप रहेंगे। केवल आपको जन्म-मरणमें डालनेवाला, नरकोंमें ले जानेवाला बन्धन रहेगा। इसलिये भोग और संग्रहकी इच्छा सर्वथा त्याग दें।

आप अपने पास धन रखें, इसमें मेरा विरोध नहीं है, पर आप जो उसके गुलाम बनते हैं, उससे मेरा विरोध है। न्याययुक्त कमाते हुए लाख रुपया आ जाय तो मौज, लाख चला जाय तो मौज! लाखों-करोड़ों आ जायँ तो वही प्रसन्नता; सब-के-सब चले जायँ तो भी आपको वही प्रसन्नता। तब तो आप वास्तवमें धनपति हैं। पर धन आनेसे तो हो जायँ प्रसन्न और चले जानेसे रोने लग जायँ तो आप धनदास हुए, धनपति नहीं हुए। रुपये जानेसे रोना-ही-रोना आ रहा है—हमारा मालिक (धन) चला गया, अब कैसे रहें? उससे पूछा जाय कि क्या चला गया भाई? अरे, जिसने कमाया था, वह तो मौजूद है? परंतु बात बुद्धिमें नहीं आती; क्योंकि उसने धनको अपना इष्टदेव मान रखा है। जिन्होंने धनको इष्टदेव मान रखा है, उन्हें झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजीका आश्रय लेना पड़ता है। उनके मनमें दृढ़तासे यह भाव जम जाता है कि झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, ठगी, ब्लेकमार्केट किये बिना पैसे पैदा नहीं हो सकते। जैसे भगवान्‌का भक्त सद्‌गुणोंका सहारा लेता है, ऐसे ही धनके भक्तको झूठ, कपट, छल, ठगी आदि दुर्गुणोंका सहारा लेना ही पड़ता है। कोई कितनी सच्ची बात कहे, पर उन्हें यही बात जँची हुई है कि झूठ, कपट, चोरी बिना पैसा पैदा नहीं हो सकता। ब्रह्माजीकी भी शक्ति नहीं, जो उन्हें समझा दें। कोई उन्हें ठीक बात समझाये तो उसे वे मूर्ख समझते हैं कि आजके जमानेमें झूठ, कपट, बेईमानी, अन्याय बिना काम कैसे चल सकता है? यह दृढ़ धारणा उनके मनमें बैठ गयी है। इसलिये यदि आपको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करनी है तो धन आदि पदार्थोंके भोग और संग्रहकी आशाका सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा।

भोग और संग्रहकी रुचि रखते हुए तत्त्वकी प्राप्ति, उसकी अनुभूति सम्भव नहीं। आजकल भगवत्तत्त्वकी बातें शीघ्र समझमें न आनेका मुख्य कारण यही है कि 'भोग और संग्रहकी रुचि छोड़ते नहीं और सच्चे हृदयसे इस रुचिको छोड़ना चाहते नहीं। इस रुचिको त्यागे बिना परमात्मतत्त्वकी बातें समझमें आतीं नहीं।'

'राम नाम नरकेसरी'—तात्त्विक भावविमर्श

(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

श्रीरामचरितमानस भगवान् श्रीराघवेन्द्रका पावन चरित्र तो है ही, भगवद्भक्तिकी अनेकविध साधनाओंका प्रतिपादक शास्त्र भी है। भक्तिमार्गमें भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम—इन चारोंको भगवत्स्वरूप ही माना जाता है। इनमेंसे चारों या किसी एकका अवलम्बन, शेष तीनोंको स्वयमेव उपलब्ध करा देगा—ऐसा भक्तोंका अखण्ड विश्वास है और यह श्रुति-शास्त्र-पुराणादि-सम्मत भी है। इसीलिये भक्ति-साधनाके साधक शब्दब्रह्म-रूप भगवन्नामको सर्वसुलभ और श्रेष्ठ उपाय मानते हैं। श्रीमद्भागवतादि-पुराणोंमें तो नाम-महिमाके अनेक सन्दर्भ विस्तृत रूपसे मिलते ही हैं, गोस्वामीजीने भी अपने इस 'मानस' ग्रन्थमें यथाप्रसंग इसका विशद प्रतिपादन अत्यन्त अभिनिवेशके साथ किया है। श्रीरामचरितमानस बालकाण्डके दोहा क्रमांक अट्ठारहवें के बादकी चौपाईसे लेकर सत्ताइसवें दोहेतक पूरा प्रसंग श्रीरामनाम-वन्दनाका ही है। ग्रन्थकारने यहाँ अनेक युक्तियों तथा औपम्य-विधानोंके द्वारा नाममहिमाका सुन्दर विवेचन किया है। यद्यपि इसमें आरम्भकी—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

(रा०च०मा १।१९।१)

—इस चतुष्पदीसे लेकर अन्ततक तात्त्विकता एवं चमत्कृति हृदयको आवर्जित करती है, किंतु प्रकरणकी उपसंहृतिका यह सत्ताइसवाँ दोहा तो एक विशेष अर्थगौरवसे मण्डित है। इन पंक्तियोंमें इसीपर एक संक्षिप्त विवेचन करनेका प्रयास किया जाता है। दोहा इस प्रकार है—

राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥

(रा०च०मा० १।२७)

इसका सर्वविदित सामान्य अर्थ है कि 'श्रीरघुनन्दनका 'राम' यह नाम साक्षात् नृसिंहमूर्ति है, जो कलियुगरूपी हिरण्यकशिपुका हनन करके अपना जप करनेवाले प्रह्लादरूपी भगवद्भक्तोंका पालन करेगा।'

श्रीरामनाम-महिमाकी परिणतिमें गोस्वामीजीकी ओरसे यह एक महत्त्वपूर्ण आश्वस्ति है। अब विचारणीय यह है कि यहाँ उनका गूढ़ कथ्य क्या है? दोहेके प्रथम दो चरणोंमें दो रूपक हैं—

(१) राम नाम नरकेसरी तथा (२) कनककसिपु कलिकाल।

तीसरे चरणमें उपमा है—'जापक जन प्रहलाद जिमि।' चौथा चरण भक्तोंके लिये आश्वासन है—'पालिहि दलि सुरसाल'—'दैवीवृत्तियोंका कष्ट दूर करके नाम भक्तजनोंकी रक्षा करेगा।' श्रीरामचरितमानसमें अनेकत्र रूपकके सुन्दर संविधानक उपलब्ध होते हैं—सो भी सांगरूपकके। गोस्वामीजी प्रायः किसी भी अभिरूप-रूपबिम्बको अधूरा नहीं छोड़ते*, किंतु यहाँ 'जापक जन प्रहलाद' इस रूपकोक्तिका आश्रय न लेकर वे 'जिमि' इस वाचक शब्दको लगाकर उपमाको ले आते हैं। इसका रहस्य यही है कि 'प्रह्लाद तो एक थे—उनका पालन तो हो गया। वर्तमान समयमें उनकी जैसी भक्तिनिष्ठा कदाचित् भक्तोंमें न हो सके, फिर भी अपने जपकर्ता—आश्रितजनोंके कलिजन्य दोषोंको निराकृत करके भगवन्नाम स्वयं उनका पालन करेगा और इसमें देश-काल अथवा संख्याका परिच्छेद नहीं है। जहाँ-जहाँ, जब-जब और जितने भी जपकर्ता नामोपासक होंगे, उनके दैवीभावोंके विरोधी अन्तरायोंको नष्ट करते हुए श्रीभगवन्नाम उनका पोषण करता रहेगा।' जापकजनोंको प्रह्लादसे उपमित करनेमें भी एक व्यङ्ग्यार्थ है कि जैसे प्रह्लादजीके जीवनमें अत्यन्त कष्ट और परीक्षाएँ आयीं, फिर भी वे 'प्र' अर्थात् प्रकृष्ट 'ह्लाद'

---

* एक उदाहरण द्रष्टव्य है—
उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग। बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥
(रा०च०मा० १।२५४)

अर्थात् आनन्दसे युक्त ही रहे, वैसे ही नामका आश्रय लेनेवालेपर कितनी भी विपत्तियाँ आयें—उसकी कितनी भी परीक्षाएँ हों, वह नामकी कृपासे परमानन्दमें ही निमग्न रहेगा।

राम-नामको नृसिंह तथा कलियुगको हिरण्यकशिपु कहनेमें भी विलक्षणता है। हिरण्यकशिपु या कनककशिपु एक द्वन्द्व है। 'हिरण्य' या 'कनक' का अर्थ है—सुवर्ण अर्थात् भौतिक चाकचक्य और 'कशिपु' का अर्थ है—शय्या अर्थात् कामोपभोग तथा निद्रा-आलस्य प्रमादादि भावोंकी वृत्ति। संसारमें कनक और कामिनी—ये दो ही तो महाव्यामोहके स्वरूप हैं—

वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः॥

अर्थात् ब्रह्माजीने इस संसारमें भ्रमके दो प्रकार रच दिये हैं एक 'स्त्री', दूसरा सुवर्ण (धन-सम्पत्ति)। इन दोनोंमें आसक्त न होनेवाला मनुष्य मनुष्य नहीं, साक्षात् परमेश्वर है।

'कनक' समस्त ऐश्वर्योंका प्रतीक अथ च लोभका उपलक्षण है तथा 'कशिपु' अर्थात् 'शय्या' भोग-वृत्ति या कामकी प्रतीक है, इस प्रकार हिरण्यकशिपु तत्त्वतः संग्रह और भोग अथवा लोभ और कामका सम्मिश्रित रूप है—द्वन्द्व है। शास्त्रोंमें कलियुगका जो चित्र वर्णित है, उसमें उसका अधिदेवता दीन-हीन तथा नग्नपुरुषकी-सी आकृतिवाला है। उसका एक हाथ जिह्वाका स्पर्श कर रहा है और दूसरा उपस्थपर केन्द्रित है। 'जिह्वा' अर्थात् लौल्य (लोभ) एवं 'उपस्थ' अर्थात् काम—यही तो कलिका वास्तविक स्वरूप है। इस दृष्टिसे कलियुगके लिये हिरण्यकशिपुसे बढ़कर दूसरा उपमान और क्या हो सकता है? यह द्वन्द्व है और यह द्वन्द्वात्मकता ही इसका सबसे बड़ा बल भी है। हिरण्यकशिपुको वरदान था कि 'वह न दिन में मरेगा न रात में, न बाहर मरेगा न भीतर, न शस्त्रसे मरेगा न अस्त्रसे, न मनुष्यसे मरेगा न पशुसे ·······।' भगवान्ने इसी द्वन्द्वात्मकताकी सन्धिको पकड़ा। वे नृसिंह बन गये—न पूरे मनुष्य न ही पूरे पशु और देहलीमें ले जाकर अपनी गोदमें रखकर, सन्ध्याके समय तीव्र नखोंद्वारा उस दैत्यका वध कर डाला। द्वन्द्वात्मक भौतिकताको अपनी **'न मृगं न मानुषम्'** (श्रीमद्भा० ७।८।१८)-की अनिर्वचनीयतासे निःशेष कर डाला। इस लीलासे प्रह्लाद (प्रकृष्ट आह्लाद) अर्थात् 'ब्रह्मानन्द' का सर्वात्मना सम्पोषण संघटित हो सका। गोस्वामीजीने 'राम' इस दो वर्णोंके[1] सम्मिलित शब्द-विग्रहको 'नर-हरि'-रूपमें उपकल्पित किया है। राम-मन्त्रका प्रथमाक्षर रेफ (र्) ही इसकी शक्ति है। यह अन्तःस्थ वर्ण है। तन्त्रशास्त्रोंके अनुसार यह अग्निबीज[2] तथा पंचप्राणमय है[3] अतएव यहाँ हम नरताके प्रतीकरूपमें ग्रहण कर सकते हैं। 'नर' शब्द गतिशीलता[4] एवं विचार-प्रवणताको उपलक्षित करता है। लोभका दमन मनुष्यके मननशीलतारूप विवेकसे ही सम्भव है, किंतु काम बिना पराक्रम या वीरताके दूर नहीं होता। इस मनोभावको दबाने या हटानेके लिये किसी भयप्रद वस्तुका उपस्थित हो जाना अत्यन्त सहायक होता है। अत्यन्त कामान्धके भी समीप यदि सहसा कोई सिंह, व्याघ्र या सर्प आ जाय तो उसका वह आवेश क्षण-भरमें दूर हो जाता है और वह भयसे काँपने लगता है; क्योंकि कामवासनाकी चरितार्थता

१. यद्यपि 'राम' शब्द में र्+आ+म्+अ इस प्रकार व्याकरणकी दृष्टिसे चार वर्ण हैं। अ-कारको द्विरावृत्त मानकर उसको एक वर्ण ही माना जाय तो यहाँ तीन मूल वर्ण र्, अ्, म् सिद्ध हुए, जिनको गोस्वामीजीने 'हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥' (रा०च०मा० १।१९।१) कहकर रेखांकित किया है, किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे ऐसे स्थलोंमें स्वर और व्यंजनके संयुक्ताक्षरको एक वर्ण मानकर ही गिना जाता है, तभी 'हरिरित्यक्षरद्वयम्' (पद्मपु० उत्तरखण्ड ७१।१२) आदि वचनोंकी संगति लग सकती है। स्वयं गोस्वामीजी भी इसी दृष्टिसे 'राम' इस भगवन्नाममें दो वर्ण या अक्षर ही स्वीकार करते हैं, यथा—'राम नाम बर बरन जुग' (रा०च०मा० १।१९), 'आखर मधुर मनोहर दोऊ।' (रा०च०मा० १।२०।१) 'तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥' (रा०च०मा० १।२०)

२. अनन्तोऽग्न्यासनः (शारदातिलक-तन्त्र)

३. रेफञ्च चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीद्वयसंयुतम्। पञ्चप्राणमयं वर्णम्.....। (कामधेनु-तन्त्र, षष्ठ पटल)

४. 'नॄ नये' (भ्वा० क्र्या० प० से) अच् प्रत्यय 'नरति, नृणाति वा नरः' (अमरकोष २।६।१ पर 'रामाश्रमी' टीका)

भीतिमें नहीं हो सकती। कामके शत्रु भगवान् शिवके गलेमें सर्प और मुण्डमाल आदि होनेका यही रहस्य है। राम-मन्त्रका म-कार अपनी तात्त्विक स्वरूप-विलक्षणताके कारण भय-जनकता तथा पराक्रमका भी द्योतक है। कोशकारोंने अनेक अर्थोंके साथ इसका एक अर्थ 'यम' भी माना है। शारदातिलकमें म-कारको चतुर्भुज, मुण्डमालाधारी तथा विषयुक्त सर्पके सदृश भयानक कहा गया है। वर्णाभिधान-तन्त्रने इसे 'महाकाल' तथा 'महान्तक' की संज्ञा दी है। कामधेनु-तन्त्रके अनुसार यह अत्यन्त ऊर्जस्वल तथा अरुणादित्य-संकाश है, कदाचित् इसीलिये मानसकारने इसे सिंहसे उपमित किया है।

आशय यह है कि 'राम'-शब्दका रेफ विचार तथा म-कार दृढ़ताका प्रतीक है; क्योंकि ऐश्वर्यकी सार-हीनताका विचार करके लोभसे बचा जा सकता है और दृढ़ता या मनोरोधके द्वारा कामको भी वशमें किया जा सकता है। इस दृष्टिसे रेफ पापोंका परिमार्जन है तो म-कार है उनका आत्यन्तिक वर्जन। इसी तथ्यको गोस्वामीजीने अन्यत्र भी प्रतिपादित किया है—

तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप-पहार।
फिर आवन पावत नहीं, देत मकार किँवार॥

रामनामका आश्रय लेनेवालोंपर प्रह्लादकी भाँति परीक्षाकी घड़ियाँ तो आ सकती हैं, किंतु जो अपनी निष्ठा नहीं छोड़ेंगे, वे उस परीक्षामें सफल होंगे—इसमें सन्देह नहीं है। प्रभुका नाम स्वयं उनका पालन करेगा। इसके सहारे वे लोभ और कामके द्वन्द्व कलिकालको तिरस्कृत करके परमानन्दमें निमग्न रह सकेंगे; क्योंकि इस युगका परम-साधन हरिनाम ही तो है—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(नारदपुराण पू० ख० ४१। ११५)

पहलेकी पंक्तियोंमें श्रीगोस्वामीजी महाराज भी यही बात कह आये हैं—

राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

(रा०च०मा० १। २७। ६-७)

बागकी रक्षाका अधिकार है, फल खानेका नहीं

साधु इब्राहीम आदम घूमते-घामते किसी धनवान्‌के बगीचेमें जा पहुँचे। उस धनी व्यक्तिने उन्हें कोई साधारण मजदूर समझकर कहा—'तुझे यदि कुछ काम चाहिये तो बगीचेके मालीका काम कर। मुझे एक मालीकी आवश्यकता है।'

इब्राहीमको एकान्त बगीचा भजनके उपयुक्त जान पड़ा। उन्होंने उस व्यक्तिकी बात स्वीकार कर ली। बगीचेका काम करते हुए उन्हें कुछ दिन बीत गये। एक दिन बगीचेका स्वामी कुछ मित्रोंके साथ अपने बगीचेमें आया। उसने इब्राहीमको कुछ आम लानेकी आज्ञा दी। इब्राहीम कुछ पके आम तोड़कर ले आये; किंतु वे सभी खट्टे निकले। बगीचेके स्वामीने असन्तुष्ट होकर कहा—'तुझे इतने दिन यहाँ रहते हो गये और यह भी पता नहीं कि किस वृक्षके फल खट्टे हैं तथा किसके मीठे?'

साधु इब्राहीमने तनिक हँसकर कहा—'आपने मुझे बगीचेकी रक्षाके लिये नियुक्त किया है। फल खानेका अधिकार तो दिया नहीं है। आपकी आज्ञाके बिना मैं आपके बगीचेका फल कैसे खा सकता था और खाये बिना खट्टे-मीठेका पता कैसे लगता।'

वह व्यक्ति तो आश्चर्यसे साधुका मुख देखता रह गया।

'मन क्रम बचन करेहु सेवकाई'

(श्रीबालकृष्णजी कुमावत)

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीलक्ष्मणजीके चरित्रको समर्पित सेवकके चरित्रके रूपमें दर्शाया है। जहाँ भरत प्रेमकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं, वहाँ लक्ष्मण सच्चे सेवककी भूमिकामें खरे उतरते हैं। जब भगवान् श्रीराम वनको प्रस्थित होने लगे तो लक्ष्मण अधीर हो उठे और उन्होंने प्रभुकी सेवामें रहनेके लिये दृढ़ संकल्प कर लिया। वे माता सुमित्रासे प्रभु श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आज्ञा लेने जाते हैं। माताजी सहर्ष स्वीकृति ही नहीं देती हैं, अपितु इसे समस्त पुण्योंका फल भी निरूपित करती हैं—

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

(रा०च०मा० २।७५।३-४)

वे कहती हैं—जबतक श्रीरामजी अयोध्यामें रहे, तबतक सबका भाग्य रहा, सबको दर्शन होते रहे, सबको सेवा मिलती रही। वनमें तुम्हारा ही भाग्य है, सब सेवा तुम्हींको प्राप्त हुई। ऐसा ही श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणके चालीसवें सर्गमें पुरवासियोंने कहा है—

अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्।
भ्रातरं देवसंकाशं यस्त्वं परिचरिष्यसि॥
महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।
एष स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि॥

(वा० रा० २।४०।२५-२६)

अर्थात् अहो लक्ष्मण! तुम धन्य हो, तुम्हारे मनोरथ सिद्ध हुए, जो तुम प्रियवादी देवसदृश भ्राताकी सेवा करोगे। तुम्हारी बुद्धि प्रशंसनीय है। तुम्हारे भाग्यका बड़ा भारी अभ्युदय हुआ, जो तुम साथ जा रहे हो। यह तुम्हारे स्वर्गका अर्थात् सर्वाधिक सुखका मार्ग है।

श्रीसीतारामचरणानुराग होना ही सबसे बड़ा फल है। गीतामें भी कहा है—

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

वनमें प्रभुके साथ जानेकी अनुमति माता सुमित्रासे प्राप्त हो जानेपर लक्ष्मणजीके हर्षकी सीमा नहीं रही। जाते समय माता सुमित्राने उन्हें जो उपदेश किया, वह उपदेश मानवमात्रके लिये दिया गया है। सेवा करते समय हमें किन-किन विकारोंसे बचना है, सेवा मन, वचन और कर्मसे होनी चाहिये, सेवकमें प्रमादका उदय नहीं हो और स्वामीको तनिक भी क्लेश नहीं हो आदि बातें सेवकको सदैव अपनानी चाहिये। गोस्वामीजी निम्न पंक्तियोंमें माता सुमित्राके माध्यमसे सेवाके आवश्यक तत्त्वोंका वर्णन करते हैं—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

(रा०च०मा० २।७५।५-८)

इन पंक्तियोंमें सेवकका धर्म निरूपित किया गया है। सेवकको पाँच बातोंके वश स्वप्नमें भी नहीं होना चाहिये—राग, रोष, ईर्ष्या, मद (घमण्ड) तथा मोह। सब प्रकारसे विकारोंको त्यागकर मन-कर्म-वचनसे सेवा करनी चाहिये। माता सुमित्राने लक्ष्मणजीको यह

आश्वासन भी दिया कि निर्विकार भावसे एवं पूर्णतः समर्पित होकर सेवा करोगे तो तुम्हें वनमें सब तरहसे सुख होगा। तुम्हारे संग पिता-माता श्रीराम-सीताजी हैं। अर्थात् माता-पिता पुत्रको हर तरहका आराम देते हैं, तुम्हें अपने आरामकी चिन्ता वहाँ नहीं करनी पड़ेगी। हे पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामजी वनमें क्लेश न पायें।

राग (सांसारिक प्रेम), क्रोध, ईर्ष्या (डाह), मद और मोह—ये सब सेवा (रामभक्ति)-के बाधक हैं। इनसे सदैव बचते रहना चाहिये। अन्यत्र इसकी पुष्टि करते हुए मानसमें कहा गया है—

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ॥

(रा०च०मा० ३।३८क)

श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें भी इसी बातको रेखांकित किया गया है कि जो व्यक्ति इन नरकके द्वारोंसे बच जाता है, वही परम गतिको प्राप्त कर सकता है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

(गीता १६।२१-२२)

अर्थात् काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं। अतएव इन्हें त्याग देना चाहिये। जो पुरुष इनसे मुक्त हो अपने कल्याणका आचरण करता है, वह परमगतिको जाता है अर्थात् परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है।

रागके वश न होनेका भाव यह है कि श्रीसीता-रामजीको छोड़ अन्य किसीमें प्रेम नहीं करना है। रोषके वश न होनेका भाव यह है कि श्रीरामसीताजी जो आज्ञा दें—वह यदि तुम्हारे मनके अनुकूल न भी हो तो भी कदापि रुष्ट न होना। लक्ष्मणजीने इसे प्रमाणित भी किया है। देखिये—माताके उपदेशपर वे कैसे दृढ़ रहे हैं। ***'मरम बचन जब सीता बोला'*** और ***'जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥'*** पर लक्ष्मणजी कुछ रुष्ट होकर न बोले—क्रोध आनेसे सेवा भंग हो जायगी, इस बातका बराबर ध्यान रखा। ईर्ष्याके वश न होनेका भाव यह है कि किसी समय किसी भी कारणसे यह चित्तमें न आये कि श्रीरामजी भी राजकुमार हैं और मैं भी राजकुमार हूँ, दोनों बराबर हैं, सेवा क्यों करें? मदके वश न होनेका भाव यह है कि कभी भी जाति, विद्या, बल इत्यादिका गर्व न हो, यह बात कदापि मनमें न आये कि मेरे अतिरिक्त कौन इनका रक्षक या सेवक है। मोहके वश न होनेका भाव यह है कि घरका कभी भी मोह नहीं रहे।

उपर्युक्त पाँच विकारोंके अलावा अन्य विकारोंका त्याग करनेके लिये भी माता सुमित्राने पुत्र लक्ष्मणको आदेश दिया। अर्थात् सब प्रकारके विकारोंको छोड़कर मन, कर्म तथा वचनसे सेवा हो—इस बातका पूरा-पूरा ध्यान रखना सेवकका सच्चा धर्म होता है। मनकी सेवा यह है कि सेवाके समयका ध्यान बना रहे। वचनकी सेवाका आशय यह है कि मनकी बात रखकर अनुकूल आज्ञा माँगना और उसे पूरा करना। सदैव प्रिय, मधुर, कोमल प्रेममय वचन बोलना। कर्मसे सेवाका तात्पर्य प्रत्यक्ष सेवा करना है। माता सुमित्राजीने लक्ष्मणजीको यह भी निर्देश दिया कि वनमें श्रीरामसीताजीको कोई भी क्लेश नहीं हो, वही उपाय तुम्हें करना है। वनमें बहुत क्लेश हैं। कहा भी गया है—***'बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।'*** पर्णशाला, भोजनशाला, पुष्पशय्या, वनके जीवोंकी रक्षा इत्यादिसे सम्बन्धित समुचित सेवाका उपदेश इसमें निहित है।

माता सुमित्राजीको कितना ख्याल है कि श्रीरामजीको दुःख न हो। यह बात गीतावलीसे भलीभाँति स्पष्ट हो जाती है। अपने पुत्र लक्ष्मणको शक्ति लगनेका शोक उनको नहीं है वरन् राम अकेले हैं, इसका शोक है। वे

शत्रुघ्नजीसे कहती हैं कि तुम जाओ, सेवा करो। गीतावलीमें गोस्वामीजीने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है—

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन-छिन गात सुखात, छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपिसों कहति सुभाय, अंबके अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर, जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
'तात! जाहु कपि सँग', रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥
अंब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥

(गीतावली—लंकाकाण्ड पद १३)

अर्थात् जब सुमित्राजीने सुना कि लक्ष्मणजी युद्ध-स्थलमें घायल पड़े हैं और उन्होंने अपने स्वामीके लिये विपक्षी योद्धा मेघनादसे रणभूमिमें खूब ललकारकर लोहा लिया है, तो उन्हें पुत्रकी दशासे क्षणिक शोक तो हुआ पर इस बातसे संतोष हुआ कि उन्होंने रघुनाथजीकी भक्तिको स्वीकार किया। उनके अंग एक क्षणमें सूख जाते हैं और फिर दूसरे ही क्षणमें आनन्दसे हरे हो जाते हैं। तब माता सुमित्राने नेत्रोंमें जल भरकर स्वभावसे ही हनुमान्‌जीसे कहा—'रामजी कुअवसरमें भाईसे बिछुड़ गये, यद्यपि धनुष उनके हाथमें है, फिर वे शत्रुघ्न की ओर संकेत करते हुए बोलीं—शत्रुघ्न! तुम हनुमान्‌के साथ जाओ।' यह सुनकर शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर ऐसे पुलकित हो उठे, मानो सभी देव उनके अनुकूल हो गये हों। माता और छोटे भाईकी यह दशा देखकर हनुमान्‌जी और भरतजी बड़े ही ग्लानिग्रस्त हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं—तब माताने उन सबको समझाकर सचेत किया।

स्वामी प्रज्ञानन्दजीने एक स्थानपर लिखा है कि 'श्रीरामचरितमानसकी सुमित्राके समान माताका चरित्र अन्य किसी ग्रन्थमें तो क्या अन्य किसी देश या भाषामें मिलना असम्भव है। अथसे इतितक सुमित्राजीके हृदयको पुत्र-विरहका स्पर्श भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने रामभक्त पुत्रको चौदह वर्षके वनवासके लिये जाते समय भी हृदयसे नहीं लगाया। धन्य है भक्तजननी और उसका—'**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि**' हृदय। उन्होंने अपने द्वारा कही हुई इस पंक्तिको पूर्णतः सार्थक किया—

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

(रा०च०मा० २।७५।१-२)

ऐसी माताका पुत्र लक्ष्मणजीके समान सर्वलक्षण-सम्पन्न न होगा तो किसका होगा? पद्मपुराणके पातालखण्डमें माता सुमित्राके सम्बन्धमें कहा गया है कि पतिको प्रिय सुमित्राअम्बाजी धन्य हैं, जिन्होंने वीर लक्ष्मणको उत्पन्न किया, जो अहर्निश रामचरण-सेवामें रत रहे।

धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूस्वपतिप्रिया।
यस्यास्तनूजो रामस्य चरणा सेवतेऽन्वहम्॥

(पद्मपुराण पातालखण्ड १।४१)

लक्ष्मणजीने अपनी माताके उपदेशका चौदह वर्षतक अक्षरशः पालन किया। उन्होंने सोचा कि जाग्रत् अवस्थामें तो माताकी आज्ञाका उल्लंघन कदापि नहीं हो सकता, परंतु सो जानेपर नींदमें स्वप्न आनेपर उक्त विकारोंमेंसे कोई भी विकार आ सकता है, इसलिये उन्होंने यह संकल्प किया कि वे चौदह वर्षपर्यन्त सोयेंगे ही नहीं। जब नींद नहीं आयेगी तो स्वप्न आनेका प्रश्न ही नहीं उठता और वे चौदह वर्षतक नहीं सोये।

यदि राष्ट्रका प्रत्येक नागरिक राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह—इन विकारोंको त्यागकर राष्ट्रकी सेवामें लग जाय तो रामराज्यकी स्थापना आज भी हो सकती है।

'सत संगति दुर्लभ संसारा'

(वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)

देवर्षि नारदजी अपने भक्तिसूत्रमें सत्संगतिकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।' (सूत्र ३९)

महत्पुरुषोंका संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है। **'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव'** उस भगवान्‌की कृपासे ही महत्पुरुषोंका संग मिलता है।

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।' (सूत्र ४१)

क्योंकि भगवान् और उनके भक्तों में भेद नहीं है।

'तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्।' (सूत्र ४२)

अतएव उस सत्संगकी ही साधना करो, उसीकी ही साधना करो।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि महापुरुष किसे कहें? जिनके पास अकूत सम्पत्ति है या जो लच्छेदार भाषण देते हैं या जिनके हजारों अन्धश्रद्धालु शिष्यमण्डल हैं अथवा जिनके सैकड़ों सर्वसुविधायुक्त आश्रम हैं—उन्हें संत कहें?

इस विषयमें भगवतरसिकजी महाराज संतोंके लक्षण बताते हुए कहते हैं—

इतने गुन जामें सो संत।
श्रीभागवत मध्य जस गावत, श्रीमुख कमलाकंत॥
हरिकौ भजन साधुकी सेवा, सर्वभूत पर दाया।
हिंसा, लोभ, दंभ, छल त्यागै, बिषसम देखै माया॥
सहनसील, आसय उदार अति, धीरजसहित बिबेकी।
सत्य बचन सबसों सुखदायक, गहि अनन्य ब्रत एकी॥
इंद्रीजित, अभिमान न जाके, करै जगतकों पावन।
भगवतरसिक तासुकी संगति तीनहुँ ताप नसावन॥

तो भैया! भगवतरसिकजी महाराजकी कसौटीपर कसकर अच्छी तरह पूछ-परखकर उपर्युक्त गुणोंसे युक्त संतका सत्संग करनेपर ही कल्याणका मार्ग प्रशस्त होगा।

'गुरू कीजै जान पानी पीवै छान।'

सत्संगके लिये भोलेबाबा भी त्रेतायुगमें कुम्भज ऋषिके पास जाते हैं—

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥

(रा०च०मा० १।४८।१)

तुलसी बाबा कहते हैं—

सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥

(रा०च०मा० ७।१२३।६)

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(रा०च०मा० ७।६१)

क्षणमात्रका सत्संग भी संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है। इस विषयमें एक बड़ा रोचक आख्यान है, जो सत्संगकी महत्ता प्रदर्शित करता है। विश्वामित्रजी और वसिष्ठजी महाराजमें यह विवाद छिड़ गया कि तपस्या श्रेष्ठ है या सत्संग। विश्वामित्रजी तपस्याके धनी हैं। अत: उन्हें अपनी तपस्याका अतीव घमण्ड है तो विश्वामित्रजी अपनी तपस्याकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन कर रहे थे और वसिष्ठजी महाराज कह रहे थे कि ठीक है, तपस्या अपनी जगह श्रेष्ठ है, परंतु सत्संग भी कम नहीं है।

अब विवादका हल कौन करे, तो दोनों महात्मा ब्रह्माजीके पास गये, प्रार्थना की—महाराज! आप कृपाकर बतायें कि तपस्या श्रेष्ठ है या सत्संग? ब्रह्माजीने दोनों महात्माओंको देखा और मनमें विचारा कि जिसके विरुद्ध भी निर्णय दूँगा तो दोनोंमेंसे एकको अवश्य बुरा लगेगा। अत: ब्रह्माजी बोले—भैया! मुझे सृष्टिके कार्यसे अवकाश ही कहाँ है, जो आप दोनोंकी शंकाका समाधान कर सकूँ। आप दोनों भोलेबाबाके पास कैलास चले जायँ, वे अवश्य ही आप दोनोंकी शंकाका समाधान कर सकेंगे। दोनों महात्मा कैलासपर गये और अपना प्रश्न दोहराया। शंकरजीने भी अच्छी तरह सोच-विचार कर कहा—भैया! मैं तो निरन्तर रामनामका जप करता रहता हूँ, मुझे इतना अवकाश ही कहाँ कि आपकी शंकाका समाधान कर सकूँ, मेरी सलाह है कि आप दोनों भगवान् शेषनागके पास पाताल पधारें, वे अवश्य आपकी शंकाका समुचित

समाधान कर सकेंगे।

दोनों महात्मा शेषजीके पास पातालमें पहुँचे और उनके समक्ष भी अपना प्रश्न दोहराया। शेषजी बोले—भैया! मेरे सिरपर पृथ्वीमाताका भार है। इसे कोई थोड़ा हलका कर दे तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर सरलतासे दे सकूँगा। विश्वामित्रजी आप थोड़ा प्रयत्न करें, विश्वामित्रजीने अपनी साठ वर्षकी तपस्याका फल पृथ्वीमाताको अर्पण किया और प्रार्थना की कि हे पृथ्वीमाता! मैं अपनी साठ वर्षकी तपस्याका फल आपको अर्पण करता हूँ, आप थोड़ा शेषजीको अवकाश दे दें ताकि शेषजी महाराज हमारी शंकाका समाधान कर सकें, फिर भी पृथ्वीमाता एक इंचमात्र भी ऊपर न उठ सकीं। तब शेषजीने वसिष्ठजीसे कहा—आप कुछ प्रयत्न करें, वसिष्ठजीने प्रार्थना की—हे पृथ्वीमाता! मैं एक घड़ीका सत्संग आपको अर्पण करता हूँ, आप शेषजीके सिरको अपने भारसे किंचित् अवकाश दे दें ताकि शेषजी महाराज हमारी शंकाका समाधान कर सकें और तत्काल पृथ्वीमाता शेषजीके सिरसे किंचित् ऊपर उठ गयीं। तब विश्वामित्रजी बोले—शेषजी महाराज! अब आप हमारी शंकाका समाधान करनेकी कृपा करें। शेषजीने कहा—अब भी शंकाका समाधान करनेकी आवश्यकता रह गयी क्या? जो काम आपकी साठ वर्षकी तपस्या न कर सकी, वह एक घड़ीके सत्संगने करके दिखाया है, अतः मेरे विचारमें तपस्यासे सत्संग बहुत ही श्रेष्ठ है। तुलसी बाबा कहते हैं, अनेक जन्मोंके प्रभूत पुण्य हों, तभी महत्पुरुषोंका सत्संग प्राप्त होता है—

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

(रा०च०मा० ७।४५।६)

तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

(रा०च०मा० ७।६१।४)

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगति साधकी हरे कोटि अपराध॥
मन मैले तन ऊजरे बगलन कैसे भेक।
इनते तो कागा भले जो तर ऊपर एक॥

तो सज्जनो! खूब सोच-विचारकर भगवतरसिकजी महाराजकी कसौटीपर खूब कसकर उच्चकोटिके महत्पुरुषोंका संग अवश्य करें। आज भी महत्पुरुषोंका अभाव नहीं है, आवश्यकता है तो हमारे अन्तःकरणमें सत्संगके प्रति भावकी। श्रीरामचरितमानसमें संतकी कसौटी दी गयी है, वहाँ वर्णन है कि गरुड़जीने जब काकभुशुण्डिजीके आश्रममें प्रवेश किया, तभी उनका मोह, संशय और भ्रम सब नष्ट हो गया। वे काकभुशुण्डिजीसे कहते हैं—

देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

(रा०च०मा० ७।६४।२)

काकभुशुण्डिजीके आश्रमकी विशेषता थी कि मायाके गुण-दोष वहाँ प्रवेश नहीं करते थे। वस्तुतः सच्चे संतोंका यह प्रभाव रहता है कि उनके सात्त्विक स्वभावके कारण वहाँके जड़-चेतन समस्त पदार्थ सात्त्विक हो जाते हैं, जबकि असंतके पास जानेपर मन और अधिक भौतिक चाकचिक्यमें फँस जाता है।

गौकी स्तुति

(श्रीसतीशचन्द्रजी चौरसिया 'सरस')

गौएँ मेरी मैं गौओं का, वे जहाँ रहें मैं वहीं रहूँ।
गौएँ जो-जो दुःख सहन करें, उनसे बढ़कर मैं दुःख सहूँ॥
गौओं से यह ब्रह्माण्ड व्याप्त, शुभ कामधेनु है दिव्य नाम।
उस भूत और भावी माँ को, मेरा प्रणाम शत-शत प्रणाम॥

नसीबकी चाभी कर्मके हाथ

(डॉ० गो० दा० फेगडे)

संसारमें दो प्रकारके लोग पाये जाते हैं—कोई भाग्यको दोष देकर रोता-कुढ़ता है तो कोई भाग्यको चुनौती देकर हँसते-गाते सफलताकी मंजिलकी ओर चलता रहता है और एक दिन वह उसे पा भी लेता है। भारतवर्षमें आमतौरपर ऐसी धारणा है कि मनुष्यको जो भी यश-अपयश, अमीरी-गरीबी या सुख-दुःख मिलता है—वह उसके भाग्यसे मिलता है, वह पूर्वजन्मके कर्मका फल है। भाग्यवादी लोग समझते हैं कि भाग्यको बदला नहीं जा सकता, वे उसे बदलनेकी कोशिश भी नहीं करते, कर्मवादी लोगोंको यह धारणा मंजूर नहीं, वे परिस्थितिके आगे झुकते नहीं, अपितु उसपर विजय पानेकी कोशिश करते हैं। यह सच है कि जीवनमें कुछ बातें भाग्यसे मिलती हैं फिर भी जिन्दगीभर भाग्यका गुलाम बने रहना पलायनवादकी निशानी है, जिन्दगी तो ताशके खेलकी तरह होती है। ताशके खेलमें आपको कौन-से पत्ते मिलेंगे—यह नसीबकी बात होती है, लेकिन मिले हुए पत्ते किस तरह खेले जायँ—यह आपके ही हाथमें होता है। पत्तोंकी चाल चलना आपकी होशियारी, कुशलता और पुरुषार्थकी बात होती है। कर्णने महाभारतमें कहा है—**'दैवायत्तं कुले जन्मः मदायत्तं तु पौरुषम्।'** अर्थात् कौनसे कुलमें जन्म लेना यह भाग्यके हाथमें है, लेकिन पराक्रम करना मेरे हाथमें है। समाजमें भी हम देखते हैं कि कुछ लोग ऊँचे खानदानमें पैदा होते हैं, लेकिन कर्मसे हीन होते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग निम्न कुलमें पैदा होकर भी महान् कार्य करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं होती, खानेके मुहताज होते हैं, लेकिन वे लगन और मेहनतसे धनवान् बन जाते हैं, कुछ चाँदीका चम्मच मुँहमें डालकर पैदा होते हैं, लेकिन अपनी नादानीसे दर-दरके भिखारी बन जाते हैं। भगवान्ने तो उन्हें चमन (फुलवारी) दिया होता है, लेकिन वे उसको अपनी कर्मदरिद्रताके कारण सहरा (रेगिस्तान) बना देते हैं। जैसा जिसका कर्म होता है, वैसा उसको फल मिलता है। संत कबीरने सही कहा है—

करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय।
बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय॥

कर्म करते समय तो विचार किया नहीं, अब पछतानेसे क्या लाभ? बबूलका पेड़ बोकर आमके फल कैसे खानेको मिलेंगे? उसी तरह अधर्मका आचरण करनेवालेको धर्मका फल कैसे मिलेगा?

सच तो यह है कि नसीब और कर्म—ये दोनों एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। वक्त कहो, कर्म कहो, नसीब कहो या कोई भी नाम दो, कर्मके सहस्त्र नाम हैं, सब कुछ करनेवाला एक मन ही है। जो सत्कर्म करता है, उसका नसीब खुलता है। यह कहना गलत है कि भारतमें संत-महात्माओंने धर्मकी अफीम देकर लोगोंको निकम्मा बनाया है। अज्ञानी लोग ही ऐसा कहते हैं, आजतक सब सन्तोंने प्रयत्नवादकी ही सीख दी है। महाराष्ट्रके संत समर्थ गुरु रामदासने कहा है—**'यत्न तो देव जाणावा'** अर्थात् प्रयत्नको भगवान् समझो, संत तुकारामने कहा है—***'आधी कष्ट मगफल, कष्टचि नाही ते निर्फल।' 'केल्याने होत आहे रे आधी केलेचि पाहिजे।'***—इन वचनोंका भावार्थ है, पहले श्रम करो, फिर फल मिलेगा, श्रम ही नहीं किया तो फल कैसे मिलेगा? इसलिये पहले कोशिश करनी चाहिये। ***'ईश्वर उन्हींकी मदद करता है, जो स्वयंकी मदद करते हैं'*** ईसा मसीहका यह वचन दुनियाभरमें मशहूर है। गौतम बुद्धने 'स्वयंदीप' बननेका सन्देश दिया है। भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीने स्पष्ट रूपसे कहा है—**'पुरुषप्रयत्नीं दैवाचें साहय'** (आचार १०२) अर्थात् नसीब कोशिश करनेवालेकी ही सहायता करता है, सिर्फ भगवान्के भरोसेपर कामयाबी कैसे मिलेगी?

आलस्य मनुष्यका महान् शत्रु है, इसके कारण अनेक अनर्थ होते हैं। जैसे—

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्।
अधनस्य कुतो मित्रममित्रस्य कुतः सुखम्॥

अर्थात् आलसी मनुष्यको विद्या कैसे प्राप्त होगी? विद्याविहीनको धन कैसे प्राप्त होगा? निर्धनको कौन मित्र बनायेगा? और जिसको मित्र ही नहीं, वह कैसे सुखी बनेगा?

धर्मग्रन्थोंके सरताज भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कर्मयोगका ही समर्थन किया है, कर्मसे दूर भागनेवाले अर्जुनको कर्म करनेके लिये प्रेरित किया है, अर्जुन सम्पूर्ण मानवजातिका प्रतिनिधि है, भगवान् श्रीकृष्णने उसे समझाया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

(२।४७)

तेरा कर्म करनेमात्रमें ही अधिकार है, उसके फलमें कभी नहीं, इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो।

एक अन्य श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

(गीता ६।५)

अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

इस तरह श्रीमद्भगवद्गीतामें 'कर्मत्याग' नहीं बल्कि 'फलत्याग' करनेको कहा है, व्यवहारमें लोग इसके विपरीत बरताव करते हैं, हर कोई कर्म नहीं, लेकिन उसके फलको प्राथमिकता देता है, इतना ही नहीं दूसरोंके श्रमका फल भी हड़पना चाहता है, मनुष्यकी इसी वृत्तिके कारण समाजमें भ्रष्टाचार, असंतोष और अशान्ति फैलती है।

बगैर कर्मके फलकी अपेक्षा करना व्यर्थ है—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

किसी भी कार्यमें प्रयास करनेसे ही सफलता प्राप्त होती है, केवल इच्छा करनेसे नहीं। सोये हुए शेरके मुँहमें प्राणी स्वयं थोड़े ही घुसनेवाले हैं।

ऐसा कहा जाता है कि प्रतिभा ९० प्रतिशत मेहनत और १० प्रतिशत हुनर होती है (Intelligence is 90% Perspiration and 10% Inspiration)। मेहनतसे क्या नहीं मिलता? तपश्चर्यासे परमेश्वरकी प्राप्ति भी हो सकती है। इंसान अनहोनीको होनी बना देता है, कलतक जो बातें असम्भव लगती थीं, वे आज वैज्ञानिकोंके अथक परिश्रमके कारण सम्भव हो गयी हैं। यहाँतक कि मानव चाँद और मंगलपर भी जा पहुँचा। प्राचीनकालमें ऋषि-मुनियोंने घोर तपश्चर्यासे आश्चर्यजनक सामर्थ्य प्राप्त किया था। राजा भगीरथ कड़ी मेहनत करके स्वर्गसे गंगाको पृथ्वीपर लाये थे, आज भी ऐसे भगीरथ हैं। इक्कीसवीं सदीके पहले दशककी ही बात है—भारतके बिहार राज्यमें एक गाँवसे शहर जानेके लिये रास्तेमें पहाड़ होनेके कारण पचास कि०मी० का फेरा लगाकर जाना पड़ता था। दशरथ माँझी नामके एक साधनहीन किंतु उत्साही व्यक्तिने अपने दमपर छेनी-हथौड़ेसे पहाड़के पत्थरको तोड़नेकी ठानी। शुरूमें लोगोंने उसे पागल कहा, परंतु उनकी परवाह न करते हुए उसने पहाड़ तोड़ना शुरू किया। उसकी लगन इतनी थी कि कुछ सालोंमें उसने दस फिट चौड़ाईकी सुरंग पहाड़के आर-पार खोद डाली। इससे पचास कि०मी० की शहरकी दूरी सिर्फ दस कि०मी०तक आ गयी। इस प्रकार अगर लगन, मेहनत, आत्मविश्वास और भगवान्पर श्रद्धा हो तो कोई भी मुसीबत शूर आदमीको निराश नहीं कर सकती। कामयाबी तो उसके पैरोंकी दासी होती है, महाराष्ट्रके महान् समाजसेवक श्रीबाबा आमटे कहते हैं—

शृंखला असू दे पायी मी गतीचे गीत गायी।
दुःख करायाला आता आसवांना वेल नाही॥

पैरोंमें बेड़ियाँ हुईं तो क्या हुआ, मैं चलना बन्द नहीं करूँगा। उनका शोक करनेके लिये (आँसू बहानेके लिये) मेरे पास वक्त नहीं है।

निराशा कामयाबीमें रोड़ा डालती है। एक किसानने अपने खेतमें कुआँ खुदवाना शुरू किया, बीस फीट खुदवानेके बाद पानी नहीं मिला तो उसने दूसरी जगहपर पच्चीस फीट खुदवाया, फिर भी पानी नहीं मिला। उसने

तीसरी जगह तीस फीट खुदवाया तो भी पानी नहीं मिला। वह निराश होकर रोने लगा, उसके एक भले मित्रने उसे समझाया—'खोदनेका काम आधा-अधूरा छोड़नेसे पानी कैसे मिलेगा? पानी मिलनेतक एक ही जगह खोदते रहो, पानी जरूर मिलेगा।' उसने तीसरी जगह और दस फीट खोदा, वहाँ उसे पानी-ही-पानी मिला। इस कथाका तात्पर्य यह है कि किसी भी काममें कामयाबी मिलनेके लिये संयम, साहस, सातत्य और सतर्कता चाहिये। श्रीचक्रधर स्वामी कहते हैं—***'पडे तवं धाववे, मरे तवं करावे।'*** (आचारमालिका १९०) ***'धड तुटे तवं धावावे, देह पडे तव करावे परि जीवन न सोडावे।'*** (आचारमालिका २१७) इन वचनोंका भावार्थ यह है कि जबतक देहमें जान है, जबतक देह सक्षम है, तबतक कार्य करना चाहिये, आधा-अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। श्रीचक्रधर स्वामीने तो ऐसा भी कहा है कि ***'उपायें न पविजे ऐसें काहीं असे।'*** (विचारमालिका १२५) अर्थात् प्रयास करनेसे भी नहीं मिलता, ऐसा इस संसारमें कुछ भी नहीं है। ***'पुरुष जेतुल जेतुला प्रयत्न करी तेतुल-तेतुले दैव साहयाते करी।'*** (आचारमालिका ११७) अर्थात् पुरुष जितना ज्यादा प्रयत्न करेगा, उसका भाग्य उतना ज्यादा उसकी सहायता करेगा। महाराष्ट्रके संत तुकारामने भी कहा है—***'असाध्य ते साध्य करीता सायास।'*** अर्थात् धैर्यके साथ कोशिश करनेसे असाध्य काम भी साध्य हो जाता है। उर्दूमें एक कहावत है—***'हिम्मत-ए-मर्दा, तो मदद-ए-खुदा'*** अर्थात् हिम्मत रखनेवालेकी मदद परमेश्वर करता है।

लौकिक जीवनमें ही नहीं, पारलौकिक जीवनमें भी कर्म, आचरण और अभ्यास महत्त्व रखते हैं, अध्यात्म शास्त्रके अनुसार कर्मका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तरसे जुड़ा रहता है—

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

जिस तरह हजारों गौओंमें बछड़ा अपनी माताकी तरफ ही जाता है, उसी तरह मनुष्यके किये हुए कर्म (अगले जन्ममें भी) उसके साथ ही जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें बार-बार कर्मका समर्थन किया है, निष्काम कर्मयोग तो गीताके सन्देशका सार है—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

(गीता ३।८)

अर्थात् शास्त्रविधिसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप कर्म कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीने भी कहा है—**'आचरेतयाचा धर्मु'** (आचारमालिका ५२) अर्थात् आचरण करनेवालेका ही धर्म होता है। आचरणके बिना धर्मकी खोखली बातोंका कोई अर्थ नहीं, धर्ममें ज्ञान (ब्रह्मविद्याका सिद्धान्त) और कर्म (आचरण) इन दोनोंको महत्त्व दिया गया है। ज्ञानके अभावमें कर्म अन्धा होता है और कर्मके अभावमें ज्ञान लँगड़ा होता है। यदि धर्मका आचरण ही न होता हो तो वह धर्म किस कामका? वह पंखहीन पक्षीकी तरह बेकार है, निम्नलिखित श्लोकमें आचारका विशद महत्त्व बताया गया है—

आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानम् आचारात् किं न साध्यते॥

आचार श्रेष्ठ धर्म है, आचार श्रेष्ठ तप है, आचार श्रेष्ठ ज्ञान है, आचारसे क्या नहीं साध्य होता?

दुनियाका कोई भी धर्म कोरे (कर्महीन) दैववादका समर्थन नहीं करता, 'निष्काम कर्मयोग' तो हिन्दू धर्मकी आधारशिला है। नसीबपर रोनेवालोंके लिये निम्नलिखित श्लोक बहुत उपयुक्त होगा—

उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

अर्थात् उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रम—ये छः गुण जिसके पास हैं, उसकी देवता भी सहायता करते हैं यानी उसका नसीब फलता है।

मानसमन्दिर का स्वर्णकलश

(डॉ० श्रीरामस्वरूपजी ब्रजपुरिया, विद्यावाचस्पति)

गोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसकी रचनाका हेतु बताते हुए कहते हैं कि मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानलमें जल रहा है, वह यदि इस श्रीरामचरितमानसरूपी सरोवरमें आ पड़े तो सुखी हो जाय। उन्होंने श्रीरामचरित-मानसका रूपक एक सुन्दर सरोवरके रूपमें किया है, इस सरोवरके चार घाट हैं और चारों घाटोंपर चार वक्ता-श्रोता हैं—

सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

(रा०च०मा० १।३६)

वन्दनाके पश्चात् गोस्वामीजीने श्रीरामकथाका प्रारम्भ इसी दोहेसे किया है। चारों घाटके वक्ता और श्रोता हैं— (१) शिव-पार्वती, (२) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, (३) काकभुशुण्डि-गरुड़ और (४) चौथे घाटपर वक्ता हैं गोस्वामी तुलसीदासजी तथा श्रोता है समस्त संत-समाज। यद्यपि गोस्वामीजी तो इस रचनाको स्वान्तःसुखाय कहते हैं, परंतु उनका 'स्व' इतना विशाल है कि उसमें सारा विश्व ही समाया है। गोस्वामीजी कहते हैं कि इस श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंकी कथाएँ हैं, जो इस सरोवरके तोते, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं—

औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥

(१।३७।१५)

यहाँ इनमेंसे कतिपय प्रसंगोंका वर्णन किया जा रहा है—

अयोध्याकाण्डमें श्रीरामकथामें एक बड़ा मोड़ आता है—राजतिलकके स्थानपर चौदह वर्षका वनवास। वनगमनकी कथा प्रारम्भमें चित्रकूट-निवासतक बड़ी मार्मिक है। गोस्वामीजीने भरतके चरित्रको मानवीय सम्बन्धोंकी गरिमा तथा त्यागकी सबसे ऊँची चोटीके रूपमें निरूपित किया है, वह श्रीरामचरितमानसरूपी मन्दिरके 'स्वर्णकलश'-जैसा है। माता कौसल्या और गुरु वसिष्ठके कहनेपर भी भरत राज्य स्वीकार नहीं करते, वे भी श्रीरामको वापस लानेका प्रण करके वनकी ओर चल पड़ते हैं। वनमें जाते समय श्रीराम जहाँ-जहाँ गये और जिन-जिन ऋषियोंसे भेंट हुई, उन सभी स्थानोंपर भरत भी जाते हैं और उसी क्रमसे सभी ऋषियोंसे भेंट करते हैं—यहाँ भरद्वाजमुनिसे भेंटका वर्णन अद्वितीय और हृदयस्पर्शी है।

जब वनगमनके समय श्रीराम प्रयागमें उनके आश्रम पहुँचे तो वे तो जानते ही थे कि श्रीराम मनुष्यरूपमें परात्पर ब्रह्म ही हैं, इसलिये व्यवहारमें तो वे रामको हृदयसे लगाते हैं, आशीष भी देते हैं, लेकिन उनके अन्तस्‌में जो रामकी प्रतिष्ठा है, वह तो ब्रह्मकी ही है, इसलिये वे श्रीरामसे भेंटकर 'ब्रह्मानन्द' का अनुभव करते हैं—

मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥

(रा०च०मा० २।१०६।८)

इतना ही नहीं, वे श्रीरामसे आशीष भी माँगते हैं—

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

(रा०च०मा० २।१०७।८)

इस लीलामें श्रीभरत उनके लघु भ्राता हैं। प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगमपर तीर्थराज प्रयागसे यही आशीष भरत भी चाहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(रा०च०मा० २।२०४)

इसलिये जब भरद्वाज मुनि श्रीभरतसे मिलते हैं तो उन्हें भरतजी अपने ही भाग्यकी साक्षात् मूर्ति प्रतीत होते हैं; क्योंकि आकांक्षा दोनोंकी एक ही है—श्रीरामके चरणोंमें सतत सहज प्रीति, परंतु ऋषियोंकी साधना ज्ञानयोगकी साधना भी है—उनका लक्ष्य तो मोक्ष ही है और ब्रह्मानन्द ही उसका फल है। यहाँ ज्ञानसे बढ़कर भक्तिकी महिमा प्रकट की है; क्योंकि ब्रह्मानन्द ही अन्तिम पड़ाव नहीं है, उससे भी आगे मंजिल है—

प्रेमानन्द, जो भक्तकी साधना है। ऋषि भरद्वाज इस तथ्यको निम्नांकित शब्दोंमें प्रकट करते हैं—

सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥

(रा०च०मा० २। २१०। ४-५)

श्रीरामके दर्शनसे भी यहाँ भरतका दर्शन श्रेष्ठ कहा गया। प्रयागमें रहकर वर्षोंकी तपस्याका फल श्रीरामका दर्शन है, लेकिन वह अन्तिम फल नहीं, श्रीरामके दर्शनका फल श्रीभरतका दर्शन है। ज्ञानके बाद जो भक्ति होती है, वही परा भक्ति है—गोपीभाव है, जो श्रीभरतमें स्पष्ट दिखता है।

पराभक्तिमें भक्तकी अपनी कोई चाह नहीं—मोक्ष भी नहीं—भक्तकी चाह केवल यही है कि उनके इष्टको सुख मिले। इष्टके तनिक भी दु:खको वह सहन नहीं कर सकते, संसारके सब दु:ख उससे बहुत छोटे और सहनीय हैं। इसलिये ही भरतने कहा—

मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥
नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥
राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥

(रा०च०मा० २। २११। ४-५, ७-८, २। २११)

श्रीभरतजीका श्रीरामके प्रति अनन्य प्रेम है—इस बातकी गवाही भी ऋषि भरद्वाज स्वयं श्रीरामको गवाहरूपमें प्रस्तुत करके देते हैं—

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥
जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥

(रा०च०मा० २। २०८। ३—५)

यद्यपि कहावत तथा शास्त्रवचन तो यही है कि संसारमें किसी पुत्रका कपूत होना तो सम्भव है, लेकिन किसी भी माताका कुमाता होना सम्भव नहीं है; क्योंकि कोई माँ अपने पुत्रका किसी भी दशामें न अहित चाहती है न अहित देख सकती है। इस दृष्टिसे तो कैकेयी भी कुमाता नहीं है; क्योंकि उसने तो अपने पुत्रके हितमें ही वरदान माँगे थे, परंतु वे परिवारके हितमें नहीं थे। उस बिगड़ी बातको भरतने ही सँभाला और उसी सन्दर्भमें उन्होंने माताको कुमाता कह दिया, यद्यपि मनमें इसका खेद अवश्य है। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने अपनी भूलको इस प्रकार स्वीकार भी किया। भरतजीने कहा—

बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥
मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥

(रा०च०मा० २। २६१। १—३)

अर्थात् 'माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ—ऐसा भाव भी हृदयमें उठना करोड़ों दुराचारके समान है।' वास्तवमें तो यह सारी परिस्थिति तो देवताओंके राजा इन्द्रके कहनेपर देवी सरस्वतीकी योजना थी और उन्होंने मंथराकी मति विपरीत कर दी। मंथराके कहनेपर कैकेयी भी पुत्रमोहमें फँस गयी, मगर भरतपर जोर नहीं चला। फिर भी चित्रकूटकी सभामें जब भरतको अपनी बात कहनेका अवसर आया तो उन्होंने सरस्वतीका ही स्मरण किया—

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥

(रा०च०मा० २। २९७। ७)

भरतकी इच्छासे ही सरस्वतीने फिर योजनाको आगे बढ़ाया और श्रीभरत गये थे श्रीरामको वापस लौटाने और लौट आये रामाज्ञा पाकर उनकी खड़ाऊँको सिरपर रखकर और उन्हें ही सिंहासनासीनकर उनकी आज्ञासे श्रीरामके राज्यका कार्यभार सँभाला। ऐसा उदात्त और महान् भ्रातृप्रेम तथा धर्माचरणका आदर्श विश्वके किसी साहित्यमें नहीं है। इसीलिये श्रीरामचरितमानस मात्र एक ग्रन्थ नहीं, अपितु मानसमन्दिर है, उसमें श्रीराम-सीताकी प्रतिमा है, लक्ष्मणजी उसके ध्वजदण्ड हैं और भरतजी उसके स्वर्णकलश! उनका अनुपम चरित्र युगों-युगोंतक 'भायप भगति' का पथ-प्रदर्शक बना रहेगा।

द्रष्टा बनिये

(सुश्री कृष्णा कुमारीजी)

सृष्टिमें दो प्रकारकी ऊर्जा विद्यमान होती है—पहली सकारात्मक, दूसरी नकारात्मक। मानव अपने विचारों, शब्दों, भावोंके माध्यमसे ऊर्जाका आदान-प्रदान करता है। जैसी ऊर्जा वह सृजित करता है, सामनेवाले व्यक्तिपर वैसा ही प्रभाव छोड़ता है। हम देखते भी हैं कि कुछ व्यक्ति कहते ही हमारी बात मान लेते हैं या बिना कहे ही समझ जाते हैं और कुछ पूरी बात सुननेके पहले ही इनकार कर देते हैं। यह हमारे द्वारा प्रदत्त ऊर्जाका ही परिणाम होता है। जो देते हैं, वैसा ही मिलता है—सीधा-सा गणित है, यही सृष्टिका अटल नियम भी है। इसीलिये तो कहते हैं कि ज्ञानीजनोंकी संगतमें रहो और हमेशा सकारात्मकतासे सराबोर रहो।

हमारे द्वारा बोला गया एक शब्द किसीको जीवन दे सकता है, दिशा परिवर्तित कर सकता है, तो किसीको गलत मार्गपर भी ले जा सकता है; क्योंकि शब्द ब्रह्मस्वरूप है, उसमें अनन्त शक्ति है, हमने इसपर गम्भीरतासे विचार तो किया है, मगर व्यवहारमें नहीं लाते। कहीं भी, कभी भी, कुछ भी बोल देते हैं, फिर किसीके टोकनेपर कहते हैं कि अरे, वह तो मैंने ऐसे ही कह दिया था… ऐसे ही कैसे… ? जबकि नीति कहती है 'सौ बार सोचकर एक बार बोलो।' मगर हम इसके ठीक विपरीत व्यवहार करते हैं। हमें इल्म होना चाहिये कि हमारे द्वारा बोली गयी एक-एक ध्वनि ब्रह्माण्डमें स्थायी रूपसे व्याप्त होती है यानी शाश्वत हो जाती है। अब तो विज्ञानद्वारा ब्रह्माण्डकी ध्वनियोंको पुनः सुना जा सके, इसके भी प्रयास चल रहे हैं। वस्तुतः 'ध्वनि-विज्ञान' एक स्वतन्त्र विज्ञान है। जिसपर वर्तमान समयमें कई देशोंमें शोधकार्य चल रहे हैं। वैज्ञानिक प्रयासरत हैं और ऐसे यन्त्रके निर्माणकी सोच रहे हैं, जिससे अन्तरिक्षमें व्याप्त प्राचीन वाणीको पकड़कर सुना जा सके।

कहनेका तात्पर्य है कि हम 'कुछ भी' का नहीं, अपितु सारगर्भित शब्दोंका ही प्रयोग करें। कम-से-कम बच्चोंके मामलेमें तो; क्योंकि बच्चोंके कोमल मनपर एक-एक शब्द, एक-एक घटना बहुत जल्द चिर प्रभाव छोड़ती है। सब कुछ उसके अवचेतन मनमें इकट्ठा होता जाता है, लेकिन घरमें, समाजमें, विद्यालयमें अकसर बच्चोंसे कहा जाता है—'तुम कुछ भी नहीं कर सकते', 'तुम किसी कामके नहीं हो', 'तुम निरे बेवकूफ हो', 'तुम एक काम भी ठीकसे नहीं कर सकते', 'तुम्हारे दिमागमें तो गोबर या भूसा भरा हुआ है', 'देखो! तुम्हारे भाई-बहन कितने काबिल हैं' आदि-आदि। वाह भाई! इतनी निगेटिव एनर्जी बच्चोंमें भरकर हम क्या चाहते हैं? यह सब सुनकर क्या बालक कुछ करनेलायक रहेगा? किसी कामका बचेगा? नहीं, कदापि नहीं। कहते हैं कि एक झूठको भी बार-बार बोला जाय तो वह सच लगने लगता है। तब नकारात्मक शब्दोंका दोहराव आलम्बनको कहींका छोड़ेगा? नहीं… ना…। हर बार नहीं… नहीं… सुनते-सुनते तो समर्थ व्यक्ति भी न चाहते हुए भी नकारा बन सकता है; क्योंकि उसकी सकारात्मक ऊर्जा शनैः-शनैः निगेटिव एनर्जीमें बदलने लगती है। सुनी गयी एक-एक ध्वनि उसकी हर कोशिकाको प्रभावित करती है, अध्यात्मकी दृष्टिसे शनैः-शनैः उसकी मानसिकता वैसी ही होने लगती है, एक समय बाद यह उसके संस्कार बन जाते हैं।

गुणीजन, हमारे बुजुर्ग तो यहाँतक कहते हैं कि 'इनकार' भी सकारात्मक तरीकेसे करना चाहिये। निगेटिव शब्दोंका प्रयोग अच्छे-खासे व्यक्तिका जीवन बरबाद कर देता है। मसलन, किसी बालकसे बार-बार कहा जाय कि तुम तो निरे बेवकूफ हो, तो एक-न-एक दिन वह मान ही लेगा कि वह वाकईमें बेवकूफ है; क्योंकि सभी व्यक्ति उसे यही मानते हैं, वे कहते भी

हैं। बालककी हर कोशिका इस बातको स्वीकार चुकी होती है। नकारात्मक ऊर्जा उनपर हावी हो चुकी होती है। जबकि सामाजिक एवं नैतिक मान्यता भी यही है कि मूर्खको मूर्ख, लँगड़ेको लँगड़ा कभी नहीं कहना चाहिये। बात यहीं खत्म नहीं होती, अपितु उपर्युक्त शब्दोंके प्रयोगकर्तापर भी इस बातका निगेटिव प्रभाव पड़ता है। हमारे द्वारा उच्चरित शब्दोंका पहले तो हमपर ही असर पड़ेगा, जाहिर है। यह भी ध्यातव्य है कि बेवकूफ या नकारा व्यक्तिसे भी अगर यह कहा जाय कि तुम तो बहुत बुद्धिमान् हो, कर्मठ हो; यकीन मानिये, उसमें जादुई शक्तिका संचार होने लगेगा और जल्द ही वह बुद्धिमान् एवं कर्मशील बन जायगा। एक दिन वह बहुत कुछ कर जायगा; क्योंकि सकारात्मक ऊर्जाके संचारसे वह अपनी तरफसे श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ प्रयास करेगा। थोड़ी-सी भी उपलब्धि उसे खुशीसे भर देगी। उसमें असीम उत्साहका संचार होगा और उत्साहसे बड़ी कोई शक्ति अखिल सृष्टिमें हो ही नहीं सकती।

इस प्रसंगका कड़वा सच तो यह है कि अमूमन, आदमी कहनेके पहले कुछ भी नहीं सोचते। बस, जो मुँहमें आया बोल दिया। उन्हें इस बातका इल्मतक नहीं होता कि वह जो कह रहे हैं, कुछ भी गलत बोलकर किसीकी भी जिन्दगीको बरबादीकी राहपर ढकेल देते हैं। अतः बड़ोंको चाहिये कि वे हमेशा, हर हालमें सकारात्मक विचारोंका ही प्रयोग करें। बल्कि उनकी नजरमें जो निठल्ले हैं, उनसे भी यही कहें कि You are Creater 'तुम स्रष्टा हो', 'तुम अनन्त हो', 'तुममें अनन्तकी शक्ति है', आदि आदि। 'तुम चाहते क्या हो?', जो तुम चाहते हो, उसे हर हालमें प्राप्त कर सकते हो, बशर्ते कि तुम्हारे काम एवं भाव पवित्र होने चाहिये और स्वयंपर सम्पूर्ण विश्वास तथा आस्था होनी चाहिये। इसी सन्दर्भमें ईसाने कहा है—

'नन्होंमें-से एक को भी तुच्छ न समझना।'

(संत मस्ती १८। २४)

कुरआन शरीफमें भी उल्लिखित है—

'बच्चोंके मध्य न्यायपूर्वक और समान व्यवहार करना चाहिये।'

'बच्चोंसे अच्छा व्यवहार करो, उनकी कमियोंको नजर अन्दाज करते हुए उन्हें सही शिक्षा दें।' (ईसा)

जाहिर है, हर व्यक्ति ब्रह्मस्वरूप है, अनन्त शक्तिसे सम्पन्न है, लेकिन अज्ञानतावश उसे इस बातका अहसास नहीं हो पाता है और हमें ऐसे व्यक्तिको यही अनुभूति तो करवानी है। अतः सभी व्यक्तियोंको ऐसे नकारात्मक विचारों, शब्दों, ऊर्जासे बचना चाहिये। यदि सकारात्मकताको नहीं भी अपना सकते तो कम-से-कम नकारात्मकतासे तो अवश्य बचना चाहिये। बच्चोंको उत्साह नहीं दे सकते तो कम-से-कम हीनभावना तो उनमें नहीं भरें। एक बार हीनभावनाके भर जानेके बाद उससे उभरनेमें बरसों लग जाते हैं और कभी-कभी तो आदमी इससे उभर ही नहीं पाता।

तो जाहिर है कि यथासम्भव हमें इन बातोंसे बचनेकी कोशिश करनी चाहिये। मगर यह इतना आसान भी नहीं है। यदि कोई बालक कक्षामें उद्दण्डता करता हो, पढ़ता नहीं हो, हर रोज स्कूल नहीं आता हो, गृहकार्य भी नहीं करता हो, ऐसेमें शिक्षक मारने, पीटने, डाँटनेके बजाय यह कहे कि 'तुम अच्छे बच्चे हो', 'रोज स्कूल आ सकते हो', 'तुम पढ़ भी सकते हो', 'थोड़ी-सी कोशिश करो तो गृहकार्य भी कर सकते हो।' क्या ऐसा करना सम्भव हो सकता है, जी, बिलकुल नहीं··· पहला उत्तर ये ही होगा, मगर यह काम जरा मुश्किल जरूर है, लेकिन असम्भव कदापि नहीं। यह बहुत साहसिक कदम है। सामने सारी विपरीत परिस्थितियाँ हों और ऐसेमें सकारात्मक प्रतिक्रिया···।

इस बातपर कुछ दिन पहले पढ़ा हुआ एक सूत्र याद आ रहा है कि हराना बहुत आसान है, मगर किसीको जिताना उतना ही मुश्किल। वाकई झल्लाना बहुत सरल है, मगर प्यारसे समझाना···। फिर भी

सम्भावनाएँ तो हर क्षेत्रमें होती हैं। स्मरण रहे कि जिसको हम एकदम नकारा, बुद्धू समझते हैं, वही शख्स एक दिन ऐसा कार्य कर गुजरे कि दुनिया देखती रह जाय; क्योंकि प्रकृति हर व्यक्तिको एक कमी, तो एक खूबी अवश्य प्रदान करती है। अत: व्यक्ति चाहे तो सब कुछ कर सकता है, उसमें असीम ऊर्जा निहित होती है। वैसे भी हर आदमी, हर काम तो नहीं कर सकता। जिसके लिये यह बना है, वही काम बेहतरीन तरीकेसे कर सकता है। अपनी रुचिका काम हर कोई बहुत अच्छा कर लेता है।

वैसे भी ईश्वरने यह अधिकार किसीको भी नहीं दिया है कि वह दूसरे व्यक्तिके लिये किसी भी सन्दर्भमें निर्णायक बने। कम-से-कम कुछ भी उलटा-सीधा, गलत-सलत बोलकर किसी भी शख्सकी जिन्दगीको बरबाद करनेका तो बिलकुल भी नहीं और फिर यह भी तो जरूरी नहीं कि दूसरोंको परखनेका हमारा नजरिया सही ही हो, गलत भी हो सकता है। दुनियामें कोई पारंगत नहीं होता है। इसलिये कहा भी गया है कि निर्णायक नहीं, द्रष्टा बनो। सामनेवालेसे हम जो चाहते हैं, वैसी ऊर्जा उसकी ओर प्रवाहित करें ताकि उसके अन्दर जाकर उसकी मन:स्थितिको बदलनेमें हम सहायक बन सकें।

कहानी—

शिवजी भैया

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

कुछ इस प्रकारके व्यक्ति होते हैं, जिनसे मिलते-जुलते लोग हर काल, समाज और देशमें मिल जाते हैं। मैं शरत बाबूका उपन्यास 'विराज बहू' पढ़ रहा था। उसमें नीलाम्बर चक्रवर्तीके प्रसंगमें मुझे राजस्थानके शिवजीरामकी याद आ गयी। अगर यह पुस्तक उस अचंलके किसी लेखकद्वारा लिखी गयी होती तो जानकार लोगोंको नीलाम्बरके चरित्रमें शिवजीरामका भ्रम होता।

इस कथाके नायकका जन्म आजसे सौ वर्ष पहले शेखावाटीके किसी कस्बेमें हुआ था। पिताका देहान्त बहुत पहले हो गया था। साधारण-सी सम्पन्न गृहस्थी थी। घरमें माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढ़ी-लिखी तो नहीं थी, परन्तु बहुत ही चतुर और बुद्धिमती थी। पतिके मरनेके बाद दोनों पुत्रोंको अच्छी शिक्षा दी। घर-गृहस्थीको भी सँभालकर रखा। दोनों भाइयोंमें आपसमें इतना प्रेम था कि गाँवके लोग इनको राम-लक्ष्मणकी जोड़ीकी उपमा देते। उस समयकी रीतिके अनुसार दोनोंके विवाह बचपनमें ही हो गये थे।

एक दिन, बड़े भाई रामकिशनने मुम्बई जाकर काम करनेका विचार माताके सामने रखा। यद्यपि उसकी आयु केवल बीस वर्षकी ही थी, कभी परदेश जानेका अवसर भी नहीं मिला था। यात्राएँ बीहड़ और कष्टमय थीं, परन्तु पिताका साया सिरपर था नहीं। जो कुछ पासमें था, वह पिछले वर्षोंमें खर्च हो गया था। इसलिए भारी मनसे माताने आज्ञा दे दी।

छोटे भाई शिवजीराम और पत्नीको वृद्धा माताकी सेवाके लिये घरपर छोड़कर वह मुम्बईके लिये विदा हो गया। शिवजीरामके जिम्मे कुछ काम तो था नहीं, इसलिये भाईके छोटे बच्चेको खेलाता रहता और गाँवमें कभी साधु-सन्त आते तो उनकी सेवामें सबसे आगे पहुँच जाता।

तीन मील दूर जंगलमें एक कुआँ था। सुबह जल्दी उठकर नित्यकर्मके लिये वहाँ चला जाता। साथमें चार-पाँच सेर अनाज ले जाता, जो वहाँ पक्षियोंको चुगा देता। वहाँसे आकर अपनी दो गायोंको दाना-पानी खिलाता, उनके ठाणकी सफाई आदिका सब काम वही करता। फिर स्नान करके नियमसे रामजीके मन्दिर जाता, वे उनके कुलदेवता थे।

गाँव रहकर वैद्यक और नाड़ी-परीक्षाका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिये बचे हुए समयमें गरीब रोगियोंकी चिकित्सा करता और बहुतोंको दवाके सिवा पथ्य भी अपने पाससे दे देता था।

इन सबके अलावा, उसने एक नियम यह भी बना रखा था कि गाँवमें किसीकी भी मृत्यु हो, वहाँ जरूर पहुँच जाता और चलावेके सारे कामोंमें पूरे मनोयोगसे हिस्सा लेता। चाहे बैसाख-जेठकी गर्मी हो या पूस-माघकी सर्दीकी रात, ऐसा कभी नहीं हुआ कि शिवजीराम ऐसे मौकेपर नहीं पहुँचा हो।

उन दिनों छुआछूतका बहुत विचार था, परन्तु उसकी मान्यता थी कि मृत्युके बाद भगवान्‌की जोतमें जोत मिल जाती है। मृतककी कोई जाति नहीं होती। इसलिये गरीब हरिजनोंके यहाँ भी ऐसे मौकोंपर पहुँच जाता। अपने गाँव और आस-पासके देहातमें सब लोग उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।

माता धार्मिक भावनाकी थी और उसकी प्रेरणासे ही शिवजीरामकी इन कामोंमें रुचि हुई थी, परन्तु पत्नी और भौजाई बराबर नाराज रहतीं। वे कहतीं—'सब ऊलजलूल काम तुम्हारे जिम्मे ही पड़े हैं।'

कभी-कभी गाँवके संडे-मुसंडे भी बीमारी या कष्टोंका बहाना करके ठग ले जाते थे। शिवजीरामके पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बड़ा भाई तीन-चार वर्षोंके अन्तरालसे गाँव आता और दो-तीन महीने रहकर फिर मुम्बई चला जाता। माताका देहान्त होनेके बाद पत्नी और पुत्रको भी वह अपने साथ मुम्बई ले गया। गाँवमें अब पत्नी और बच्चोंके साथ शिवजीराम अकेले रह गये।

सन् १९०१ ई० में मुम्बईमें जो महामारी हुई, उसमें रामकिशनकी मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी और चौदह वर्षका पुत्र रामदयाल दोनों रोते-बिलखते अपने गाँव वापस आ गये। शिवजीरामने तो कभी कमाया नहीं था, परन्तु अब सारा भार उसपर पड़ा। मुम्बई न जाकर अपने कस्बेमें ही गल्लेकी दुकान कर ली, भतीजेको भी साथ ले जाकर काम सिखाने लगा।

दुकानदारीमें जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिये, उसका शिवजीराममें सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले जाते, रुपया-पैसा देते नहीं। वे जानते थे, शिवजीराम कभी कचहरी जाकर अदायगीके लिये नालिश नहीं करेगा। आखिर, दो-तीन वर्ष बाद नुकसान देकर दुकान उठानी पड़ी। इसी बीच, भतीजा रामदयाल अपने पिताकी तरह ही काफी होशियार हो गया और मुम्बई चला गया।

रामदयालके पिताका वहाँके बड़े व्यापारियोंसे अच्छा सम्पर्क था और उसकी ईमानदारीकी साख भी थी। मुम्बई जाकर उसने कॉटन-एक्सचेंजमें अपने पिताके नामके पुराने फर्मको फिरसे चालू कर लिया। संयोग ऐसा बना कि थोड़े वर्षोंमें ही काम जम गया और उसके पास लाखों रुपये हो गये।

कई बार चाचाको मुम्बई आनेके लिये रामदयाल ने लिखा, परन्तु गाँवमें इतने तरहके काम रहते कि शिवजीराम मुम्बई न जा सका। बादमें द्वारकाधामकी यात्राके समय उसको सपरिवार मुम्बई ठहरनेका मौका मिला। वहाँ अपने भतीजेका वैभव और सुनाम देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। रामदयालने और उसकी पत्नीने उन्हें सदाके लिये वहीं रहनेका आग्रह किया, परन्तु उसका मन महानगरीमें नहीं लगा और थोड़े दिनों बाद ही वापस राजस्थान आ गया। अब शिवजी भैया की जगह सेठ शिवजीराम हो गया। दान-धर्मकी मात्रा बढ़ गई, परन्तु प्रौढ़ हो गया था, इसलिये पहले जितनी भागदौड़ नहीं कर पाता था।

इतने गुणोंके बावजूद उसमें एक कमी रही कि घरकी समस्याओंकी तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। दोनों लड़कियोंका विवाह तो अच्छे घरोंमें हो गया, परन्तु एकमात्र लड़का लिख-पढ़ नहीं पाया।

कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनको शिवजीरामके यश

और मान-बड़ाईसे ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने मुम्बईमें रामदयालके कान भरने शुरू किये कि इतनी मेहनत करके कमाते तो तुम हो और वाह-वाही तथा सेठाई सब तुम्हारे चाचाजीकी होती है। उसकी स्त्री तो पहलेसे ही भरी बैठी थी, पर पतिके डरसे चुप थी। उसके बहुत कहने-सुननेपर कई वर्षों बाद रामदयाल स्त्री-बच्चों-सहित मुम्बईसे अपने गाँव आया। वास्तवमें ही, जो बात लोगोंने कही थी, वह सही निकली। चारों तरफ सेठ शिवजीरामकी प्रशंसा हो रही थी। वे जिस तरफसे निकल जाते लोग खड़े होकर, राम-राम करते। सुबह-शाम सैकड़ों अभ्यागतोंके लिये अन्न-क्षेत्र चालू था। मौका देखकर रामदयालने चाचासे बँटवारेके लिये कहा। एक बार तो शिवजीरामको बहुत कष्ट हुआ; पर तुरन्त ही सम्हलकर बोले—'बेटा! कमाया हुआ तो सब तुम्हारे पिताजीका ही है, मैंने तो उम्रभर केवल खर्च ही किया, इसलिये जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमें क्या कहना है?'

एक कागजपर सम्पत्तिका ब्यौरा लिखा गया। बड़ी हवेली और मुम्बईका फर्म रामदयालने अपने लिये रखना चाहा। नकद रुपयोंका दो बराबरका हिस्सा हुआ। अपना मकान छोड़कर जानेमें बहुत क्लेश होता है, परन्तु शिवजीरामके चेहरेपर जरा भी शिकन नहीं आयी। उसने कहा—'तुम्हारी मान-बड़ाई और इज्जतके लिये बड़ी हवेलीमें रहना सर्वथा उचित भी है। मैं कल ही छोटी हवेलीमें चला जाऊँगा। अब रही नगद रुपयेकी बात, सो मुझे तो अन्दाज ही नहीं था कि अपने पास इतना सारा रुपया है! मैं इनको कहाँ सम्हाल पाऊँगा? देवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयोंको तुम अपने पास ही रहने दो। खर्चके लिये जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।' अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी आँखें जरूर गीली हो गयी थीं। रामदयाल सोचने लगा कि न तो चाचाजीने हिसाबकी जाँच की, न हवेली छोड़नेमें आपत्ति की और न मुम्बईके फर्मकी साख (गुडविल)-के बदलेमें ही कुछ चाहा; बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास ही छोड़ रहे हैं।

उसे अपने-आपपर ग्लानि और लज्जा हो आयी। रोता हुआ चाचाके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगा। कहने लगा—'लोगोंके बहकावे में आकर मैंने यह नासमझी की। मुझे किसी प्रकारका भी बँटवारा नहीं करना है। बड़े भाग्यसे आप-सरीखे चाचा मिलते हैं। पिताजी तो बचपनमें ही छोड़कर चले गये। अगर आप पढ़ा-लिखाकर मुझे योग्य नहीं बनाते तो भला आज हम सबका क्या होता?'

कुछ दिनों बाद बम्बई जाते समय अपने छोटे भाई देवदत्तको भी साथ ले गया। वहाँ जाकर उसकी पुरानी आदतें छूट गयीं और वह भी काममें लग गया।

मैंने जब शिवजीरामको देखा था, उस समय वे अस्सी वर्षके वृद्ध थे। संयम और त्यागका जीवन रहा, इसलिये उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा था। दान-धर्मके तौर-तरीके बदल गये थे। सदाव्रत और ब्राह्मण-भोजनके साथ-साथ, उनके द्वारा स्थापित स्कूल, अस्पताल और जच्चाघर भी जनताकी सेवा कर रहे थे।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टाँटिया]

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यजेः। क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत् पिबेः॥

भाई! यदि तुझे मुक्तिकी इच्छा है तो विषयोंको विषके समान त्याग दे तथा क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्यको अमृतके समान ग्रहण कर। (अष्टावक्रगीता)

भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ

(डॉ० श्रीअशोकजी काले)

न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंने १९९३ ई० में डायबिटीज (पहले प्रकारका इन्सुलीन डिपेन्डेन्ट), ऑटोइम्यून रोग, करोनरी आर्टरी डिसीज-जैसी कई बीमारियोंकी जड़ यूरोपियन गायोंका दूध होनेका दावा (Hypothesis) पेश किया है। इस दूधको वे A1 दूध कहते हैं। यूरोपियन गोवंशमेंसे होलस्टीन फ्रिजियन, जर्सी, स्विसब्राउनके दूधमें BCM7 जहर होनेका मुद्दा उठानेके बाद उन्होंने ऐसी गायोंकी पहचानके लिये पशुके बालोंकी जाँच करनेकी प्रणाली विकसित की और उसका पेटेन्ट लिया। BCM7 पैदा करनेवाले दूधके उस अंशको A1 बीटाकेसीन कहते हैं और उसके पाचनसे जो खतरनाक रस निर्माण होता है, उसे BCM7 कहते हैं। यह नशीला होता है; क्योंकि इसमें अफीम 'मारफीन' होता है। न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंने जब एशियाके गोवंशकी जाँच की तब वे फूले नहीं समाये। सभी भारतीय गोवंश, जिसमें गीर, साहीवाल, हरियाना, कांकरेज, देवणी, थारपारकर गिने जाते हैं, A1 मुक्त यानी सुरक्षित पाये गये।
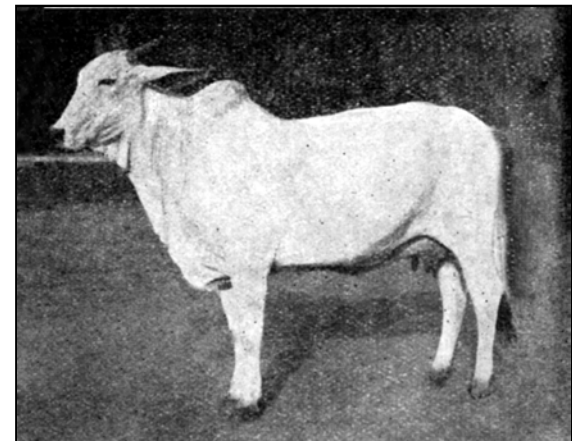
BCM7 का पूर्ण रूप 'बीटा-केझो-मॉरफीन 7' है। इन वैज्ञानिकोंके अध्ययनसे प्रभावित होकर कुछ अमीर व्यक्तियोंने न्यूजीलैण्डके नागरिकोंके स्वास्थ्य रक्षाहेतु BCM7 मुक्त दूधका उत्पादन और वितरण करनेके लिये सन् २००० ई० में एक निजी कम्पनी स्थापित की। उस कम्पनीका नाम A2 Corporation रखा।

दुनियाके अमीर देशोंने नागरिकोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके लिये इस विषयमें अनुसन्धान करनेपर जोर दिया। रशिया, जापान, पोलैण्ड, जर्मनीने A1 दूधके दुष्परिणामोंके अध्ययन किये। उनका कहना है कि BCM7 एक चालाक शैतान है, वह जबतक खूनमें नहीं पहुँचता—उससे कोई खतरा नहीं रहता। न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंको खूनमें BCM7 पहचाननेकी जाँच विकसित करनेमें सफलता नहीं मिली थी, लेकिन रशियन वैज्ञानिकोंने गायके खूनमें BCM7 ढूँढ़नेका तरीका विकसित किया और उसका पेटेंट करा लिया। रशियाकी चार अनुसन्धान-संस्थाओंके १२ वैज्ञानिकोंने काम किया। उन्होंने दिखा दिया कि जो शिशु (१ वर्षसे कम आयुवाले) A1 दूध पीते हैं, उनके खून में BCM7 आ जाता है। ११० करोड़ आबादीवाले भारतीयोंके स्वास्थ्यका करीबी सम्बन्ध इस विषयसे है। हम सब इस संकटसे अनजान हैं।

भारतमें विगत ८० से ९० के दशकमें चलाये हुए नस्ल-सुधार अभियानने यूरोपियन गोवंशके वीर्यसे ग्रामीण क्षेत्रमें पशुपालन विभागने करोड़ों A2 (अच्छी) गायोंको A1 (विषैला) बना दिया है और हम जब बाजारमें थैलीमें दूध लेते हैं, वह कई A1 गायोंके दूधका मिश्रण होता है। वही पीकर हम बड़े हुए। अब बार-बार यह कहा जा रहा है कि भारतमें डायबिटीज, दिलकी बीमारियाँ, ऑटोइम्यून रोग बढ़ रहे हैं। भारत इन बीमारियोंकी वैश्विक 'राजधानी' हो गया है।

आज देश में A2 दूध (स्वास्थ्यरक्षक) A1 (विषैले) दूधके साथ बेचा जा रहा है। यदि हम A2 दूध स्वतन्त्र रूपसे बेचें, उपलब्ध करायें तो भारतकी

आनेवाली पीढ़ियाँ जहरीले दूध A1 से बच सकती हैं। यही सोच रखकर न्यूजीलैण्डमें A2 दूधके लिये A2 Corporation की स्थापना की गयी थी।

जब न्यूजीलैण्डके नागरिकोंको A2 दूधकी आवश्यकता महसूस हुई, उन्हें दूध पानेके लिये १० वर्षतक इन्तजार करना पड़ा। उन्हें भारतसे A2 गोवंशका वीर्य या A2 साँड़ मँगवाने पड़े, फिर उनसे भारतीय नस्लकी गायें बनीं और वे A2 दूध देने लगीं, लेकिन हमें यह सब करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे सभी राज्योंमें सैकड़ों गोपालक हैं, जो शुद्ध A2 भारतीय गायोंको सैकड़ोंकी संख्यामें पाल रहे हैं। इसीलिये ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि हम खुशनसीब हैं, हमें १० वर्षका इन्तजार आवश्यक नहीं है।

करनालके पशु जेनेटिक अनुसन्धान संस्थानके अध्ययनके नतीजे—भारत सरकारके करनाल-स्थित राष्ट्रीय पशु जेनेटिक अनुसन्धान संस्थानने २००९ ई० में भारतीय गो और भैंस वंशकी जनुकीय (Genetic) जाँच की थी। दोनोंमें A2 जनुक (जीन्स) पाया गया, वे A1 मुक्त पायी गयीं।

भारतसे वीर्य और A2 साँड़ ले जानेके बाद पर्याप्त मात्रामें A2 दूध मिलनेके लिये १० वर्ष लगेंगे। यह १० साल भारतके लिये सुहावना अवसर है। हम सिर्फ A2 दूधका निर्यातकर अरबों रुपये कमा सकते हैं। इन दस वर्षोंमें भारतके गोपालक किसान ५० वर्षोंके अँधेरे युगसे उभर सकते हैं। विकसित देश A2 दूधमें स्वयं पूर्ण हों, इसके पहले हम A2 दूधके वैश्विक उत्पादक बन जायँ।

इसके लिये हमें निम्नलिखित नीतियाँ अपनानी होंगी—

१. भारतीय A2 साँड़ोंका निर्यात बन्द करें।

२. भारतीय गोवंशके दूधकी A1, A2 स्थिति जाननेके लिये राज्य सरकारें जिला स्तरपर जेनेटिक जाँचकी प्रयोगशालाएँ स्थापित करें।

३. A2 दूध बेचकर आनेवाली राशिसे A2 दूधके मानवीय स्वास्थ्यपर होनेवाले अच्छे परिणामोंके अनुसन्धानके लिये चिकित्सा महाविद्यालयोंको प्रेरित करें।

ये बातें यदि राज्य सरकारें करती हैं तो वे आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न हो जायँगी। मध्यपूर्वके देश डीजल-पेट्रोलके बलपर सुसम्पन्न हो गये हैं। हमारा गोवंश हमारे लिये भाग्यविधाता हो सकता है। आज पुरानी मूर्तियाँ देशके बाहर ले जाना जैसे प्रतिबन्धित है, वैसे ही भारतके साँड़ और उनका वीर्य ले जानेपर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

[प्रेषक—श्रीरामदयालजी पोद्दार]

संत उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

मेरे निज स्वरूप! जब भगवान् हमारे हैं और हमारे भीतर ही हैं तो फिर चिन्ता कैसी? शोक कैसा? वे सर्वसमर्थ हैं, उनकी महिमाका वारपार नहीं, तो फिर भय कैसा? उनकी सत्तासे कोई बाहर नहीं, आँखोंसे कोई ओझल नहीं, तो फिर पश्चात्ताप कैसा? इन बातोंको अपने जीवनमें उतार लेनेवाले मनुष्यके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहती।

यदि भगवान्को ही पसन्द कर लें, तो हममें उनका प्यार पैदा हो जायगा, उनकी याद आने लगेगी और मन भी लग जायगा। यदि हम उन्हींके नाते सब काम करें, तो विस्मृति कभी न होगी।

भगवान् प्यारे लगें, उनकी याद बनी रहे, मन लग जाये, इसीका नाम भजन है। यही तो भक्ति है। परहितका भाव हो, सबके साथ सद्भावना हो—यही तो सेवा है। कुछ नहीं चाहना ही तो त्याग है। भगवान्के समर्पण हो जाना ही तो प्रेम है। इसीका नाम सच्चा भजन है। अपने स्थानपर ठीक बने रहें, तो सभी धर्मात्मा हैं।

काम छोटा-बड़ा कोई नहीं है। अपने वर्णाश्रमके अनुसार सही बना रहे—यही धर्म है। विचारपूर्वक सबसे असंग रहना ही सच्चा वेदान्त है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भगवान्की शरण ग्रहण करना ही वैष्णवता है। इन बातोंके जीवनमें आ जानेपर सभीका कल्याण हो जाता है। केवल कथनसे तथा क्रियामात्रसे कभी किसीका कल्याण नहीं हो सकता।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

असंतोष और ईर्ष्यासे दुःख

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है। क्षमा कीजियेगा।

आपने अपने मनकी जो स्थिति तथा मानस-पीड़ाकी जो बात लिखी, सो ऐसी स्थिति इस समय बहुत लोगों—अच्छे-अच्छे विचारशील तथा सम्पन्न पुरुषोंके मनकी हो रही है। इसका कारण, आपने ठीक लिखा है। वह है—'अपनी स्थितिमें असंतोष और दूसरोंकी स्थितिमें डाह।'

आप ही बताइये—आपको किस बातकी कमी है? स्त्री है, पुत्र है, मकान है, बड़ा व्यापार है, मान-इज्जत है। फिर भी आप दुखी हैं—इसलिये हैं कि आपके पास जितना जो कुछ है, उससे संतोष नहीं है और दूसरे किसीके पास इससे अधिक है तो वह क्यों है, आपके पास क्यों नहीं—यह डाह है। अतः आप उससे भी अधिक पानेके लिये बेचैन हैं तथा विवेक छोड़कर घुड़दौड़में आगे बढ़ना चाहते हैं। मैं ऐसे सज्जनोंको जानता हूँ, उनमेंसे कई मुझसे बहुत स्नेहका सम्बन्ध रखते हैं, जो सब तरह धन-सम्पत्ति, मान-कीर्ति होनेपर भी असंतोषवश बड़े-बड़े नये व्यापार करने लगे और अब बुरी तरह फँसे कि पहलेकी सम्पत्ति-कीर्ति तो गयी ही, नयी विपत्तियोंसे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो रहा है। उनमेंसे दो-एकको समझाया भी गया था, पर वे उस समय एक ऐसे नशेमें थे कि बात उनकी समझमें आयी ही नहीं और अब पछताते हैं।

प्रकृतिके विस्तारका अन्त नहीं है और प्रकृतिका प्रत्येक पदार्थ, प्रकृतिकी प्रत्येक परिस्थिति अपूर्ण और अनित्य—फलतः परिणाममें दुःखप्रद है। इससे कहीं भी, किसी भी स्थितिपर पहुँच जाइये, कमी मालूम होगी, अभावका अनुभव होगा। उस अभावको मिटाने जाइये—या तो उसके मिटानेके पहले आप मिट जाइयेगा अथवा कदाचित् वह मिटा तो दूसरा उससे भी बड़ा अभाव तुरंत उपस्थित हो जायगा, जो आपको नये दुःखोंमें डाल देगा।

अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वह इस क्षेत्रमें संतोष करे। महर्षि पतंजलिने अनुभूत सत्य बतलाया है—

'संतोषादनुत्तमसुखलाभः।' (योगदर्शन २। ४२)

'संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है।'

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भक्तके लक्षण बतलाते हुए एक ही प्रसंगमें दो बार संतोषकी चर्चा की है—

'संतुष्टः सततम्' (१२। १४)

'संतुष्टो येन केनचित्।' (१२। १९)

'निरन्तर प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट' और जिस किसी प्रकारसे रहना पड़े, उसीमें सन्तुष्ट रहे। इसका अभिप्राय यह है कि संसारकी भोगदृष्टिसे दुःख, अभाव, प्रतिकूलता, विपत्ति आदि हों तो उनमें भी सन्तुष्ट रहे।

पद्मपुराणमें कहा गया है—

सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥
संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतस्य धावताम्॥
असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम्।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत्॥

(सृष्टिखण्ड अ० १९)

'जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके लिये सर्वत्र सुख-सम्पत्ति भरी है, कहीं भी दुःख-विपत्ति नहीं है; वह हर हालतमें सुखी है; वैसे ही, जैसे जिसके पैर जूतेसे ढके हैं, उसके लिये मानो सारी पृथ्वी चमड़ेसे ढकी है। संतोषरूपी अमृतसे तृप्त और शान्तचित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़-धूप करनेवालोंको कहाँ मिल सकता है? सबसे बड़ा दुःख है—'असंतोष' और सबसे बड़ा सुख है—'संतोष'। अतएव जिनको सुख चाहिये, उन्हें प्रत्येक परिस्थितिमें निरन्तर सन्तुष्ट रहना चाहिये।'

इन सब बातोंपर तथा शास्त्रवचनोंपर ध्यान दीजिये। आप तो संसारकी दृष्टिसे सब प्रकारसे सुखी और

सम्पन्न हैं। आपका यह दुःख बेसमझीसे असंतोष और ईर्ष्या—दूसरोंके उत्कर्षको न सह सकनेकी दूषित वृत्तिने बुलाया हुआ है। आप इन करोड़ों-करोड़ों अपने ही सरीखे शरीर-मनवाले स्त्री-पुरुषोंकी स्थितिको देखिये, जो भाँति-भाँतिसे अभावग्रस्त हैं, विपन्न हैं, पूरा खाने-पहननेको नहीं पा रहे हैं। उनकी ओर दयार्द्रहृदयसे देखकर अपनी स्थितिके लिये भगवान्‌के कृतज्ञ बनिये और भगवान्‌की दी हुई इस स्थितिसे यथायोग्य यथासाध्य उन अभावग्रस्तोंकी सेवा कीजिये। संतोष, मुदिता और करुणावृत्ति मनमें आयी कि आप सुखी हो जायँगे। अपनी स्थितिपर संतोष करना, दूसरोंके उत्कर्षको देखकर मुदित होना और दुःखियोंको देखकर करुणापूर्ण हो जाना—मानवका परम कर्तव्य है और यह दुःखनाशका सर्वोत्तम उपाय है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

मनको सद्भाव—सद्‌गुणोंसे पूर्ण रखिये!

आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि बहुत बार अपने ही मनके भावोंकी प्रतिमूर्ति बाहर दूसरोंमें दिखायी देती है। जिसके मनमें असत्य, काम, क्रोध, लोभ, मद, द्वेष, वैर, ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिहिंसा, घृणा आदि दुर्भाव और दोष भरे रहते हैं, उसे जगत्‌के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिक रूपसे ये दोष ही दिखायी देते हैं। जितने दोष दीखते हैं, उतनी ही उनके प्रति द्वेष, घृणाकी वृत्तियाँ बनती तथा बढ़ती हैं। इसके विपरीत जिनके मनमें सत्य, त्याग, क्षमा, संतोष, विनय, मुदिता, प्रेम, सेवा, करुणा, सहानुभूति, सौहार्द, शील, परदुःखकातरता, वात्सल्य आदि सद्भाव और सद्‌गुण रहते हैं, उन्हें जगत्‌के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिक रूपमें ये सद्‌गुण ही दिखायी देते हैं। फलतः सबके प्रति उनका आत्मीयभाव, सौहार्द, सेवा-तत्परता आदि बढ़ते रहते हैं, जिससे परस्पर सुख-समृद्धि तथा त्याग-प्रेमकी वृद्धि होती है। अतएव आप अपने मनसे दुर्भावों, दुर्विचारों और दोषोंको निकालकर उनकी जगह सद्भाव, सद्विचार और सद्‌गुणोंको भरिये और उनको बढ़ाइये। जिसके जैसे मानस—भाव होते हैं, उसको वैसे ही वातावरण, संग तथा व्यक्ति मिलते हैं, जिससे उन भावोंकी सतत वृद्धि होती है।

किसीके सम्बन्धमें मनमें कुविचार कभी मत कीजिये कि 'यह हमारा शत्रु ही है। इसके विचार कभी प्रेमके हो ही नहीं सकते। यह कभी सद्विचार, सद्व्यवहार कर ही नहीं सकता; इसमें दुर्गुण-ही-दुर्गण भरे हैं और ये दुर्गुण ही सदा वर्तमान रहेंगे; कभी भी इसमें सद्‌गुण आ ही नहीं सकते। यह कभी उठ ही नहीं सकता, गिरता ही रहेगा। इसका भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा; इसको सद्‌बुद्धि कभी आयेगी ही नहीं और इसका सद्भाग्य कभी प्रकट होगा ही नहीं।'

प्रथम तो यह बात है कि किसीके सम्बन्धमें आपका सोचना सर्वदा गलत या न्यूनाधिक रूपसे गलत हो सकता है। किसी भी कारणवश जिसके प्रति आपकी द्वेषबुद्धि हो जाती है, उसके लिये आपकी आँख ही बदल जाती है। आप मिथ्या नहीं बोलते, पर आपकी बदली हुई आँखें—जैसे हरा चश्मा लगा लेनेपर सब कुछ हरा ही दीखता है, वैसे ही—उसमें गुण न देखकर दोष ही देखती हैं। दूसरे किसीको अवगुणोंकी खान मानना और उसके सद्‌गुणसम्पन्न बननेमें अविश्वास करना—सर्वसमर्थ सर्वसुहृद् भगवान्‌की कृपा तथा शक्तिपर सन्देह करना है। भगवान् क्षणभरमें क्या-से-क्या कर सकते हैं—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।

'प्रभु चाहें तो मच्छरको ब्रह्मा बना सकते हैं और ब्रह्माको मच्छर बना दे सकते हैं।' उनकी शक्ति तथा कृपापर विश्वास कीजिये और यदि किसीमें दोष-दुर्गुण दिखायी दें तो प्रभुसे प्रार्थना कीजिये कि वे अपनी सहज कृपासे उसके दोष-दुर्गुणोंका नाश करके उसे सर्वथा निर्दोष एवं सद्‌गुण-सम्पन्न बना दें और ऐसी कृपा करें, जिससे आपको सभीमें भगवान् तथा भगवान्‌के सभी दिव्य गुण ही दिखायी दें। यही संतकी आँख है, जो भगवत्कृपासे प्राप्त होती है और इसी स्थितिको मानवताका विकास कह सकते हैं। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।३६ बजेतक	शनि	श्रवण दिनमें ९।४६ बजेतक	१ अगस्त	**कुम्भराशि** रात्रिमें ९।५ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ९।५ बजे।
द्वितीया ,, १२।२५ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ८।२५ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।१४ बजेसे।
तृतीया ,, १०।३ बजेतक	सोम	शतभिषा प्रात: ६।५२ बजेतक पू० भा० रात्रिशेष ५।१३ बजेतक	३ ,,	**श्रावण सोमवारव्रत, भद्रा** दिनमें १०।३ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ११।३८ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।५४ बजे, **आश्लेषाका** सूर्य रात्रिमें ३।३१ बजे।
चतुर्थी प्रात: ७।३६ बजेतक पंचमी रात्रिशेष ५।७ बजेतक	मंगल	उ० भा० रात्रिमें ३।३३ बजेतक	४ ,,	**मूल** रात्रिमें ३।३३ बजेसे।
षष्ठी रात्रिमें २।४२ बजेतक	बुध	रेवती ,, १।१६ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।४२ बजेसे, **मेषराशि** रात्रिमें १।५६ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें १।५६ बजे।
सप्तमी ,, १२।२७ बजेतक	गुरु	अश्विनी ,, १२।२८ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३५ बजेतक, **शुक्रास्त पश्चिम** में सायं ६।० बजे, **मूल** रात्रिमें १२।२८ बजेतक।
अष्टमी ,, १०।२४ बजेतक	शुक्र	भरणी ,, ११।१३ बजेतक	७ ,,	**वृषराशि** रात्रिशेष ४।५९ बजे।
नवमी ,, ८।३९ बजेतक	शनि	कृत्तिका ,, १०।१६ बजेतक	८ ,,	× × ×
दशमी ,, ७।१६ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ९।४० बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।५८ बजेसे रात्रिमें ७।१६ बजेतक।
एकादशी सायं ६।१७ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ९।२९ बजेतक	१० ,,	**श्रावण सोमवारव्रत, मिथुनराशि** दिनमें ९।३५ बजेसे, **कामदा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ५।४८ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ९।४७ बजेतक	११ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ५। ४९ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, १०।३५ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** सायं ५।४९ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें ४।२३ बजेसे, **गुरु अस्त** पश्चिममें प्रात: ६।१४ बजे।
चतुर्दशी ,, ६।२२ बजेतक	गुरु	पुष्य ,, ११।५३ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।६ बजे, **मूल** रात्रिमें ११।५६ बजेसे।
अमावस्या रात्रिमें ७।२२ बजेतक	शुक्र	आश्लेषा ,, १।३९ बजेतक	१४ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें १।३९ बजेसे, **अमावस्या।**

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।५० बजेतक	शनि	मघा रात्रिमें ३।४९ बजेतक	१५ अगस्त	**स्वतन्त्रता-दिवस, मूल** रात्रिमें ३।४९ बजेतक।
द्वितीया ,, १०।३७ बजेतक	रवि	पू० फा० अहोरात्र	१६ ,,	**धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री-जयन्ती।**
तृतीया ,, १२।३८ बजेतक	सोम	पू० फा० प्रात: ६।१७ बजेतक	१७ ,,	**कन्याराशि** दिनमें १२।५६ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत, सिंह-संक्रान्ति** रात्रिमें २।१९ बजे, **मघाका सूर्य** रात्रिमें २।१९ बजे।
चतुर्थी ,, २।४० बजेतक	मंगल	उ० फा० दिनमें ८।५३ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३९ बजेसे रात्रिमें २।४० बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी रात्रिशेष ४।३४ बजेतक	बुध	हस्त ,, ११।२९ बजेतक	१९ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें १२।४१ बजेसे, **नागपंचमी।**
षष्ठी अहोरात्र	गुरु	चित्रा ,, १।५४ बजेतक	२० ,,	**कलकी अवतार, शुक्रोदय पूर्वमें** दिनमें ८।४७ बजे।
षष्ठी प्रात: ६।१२ बजेतक	शुक्र	स्वाती ,, ४।० बजेतक	२१ ,,	× × ×
सप्तमी दिनमें ७।२६ बजेतक	शनि	विशाखा सायं ५।४० बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।२६ बजेसे रात्रिमें ७।४९ बजेतक, **वृश्चिकराशि** दिनमें ११।१५ बजेसे, **गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती।**
अष्टमी ,, ८।१४ बजेतक	रवि	अनुराधा रात्रिमें ६।५४ बजेतक	२३ ,,	**मूल** सायं ६।५४ बजेसे।
नवमी ,, ८।२८ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ७।३६ बजेतक	२४ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें ७।३६ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत, सायन कन्याका सूर्य** प्रात: ६।५० बजे।
दशमी ,, ८।१३ बजेतक	मंगल	मूल ,, ७।४९ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।५० बजेसे, **मूल** रात्रिमें ७।४९ बजेतक।
एकादशी ,, ७।२९ बजेतक	बुध	पू० षा० ,, ७।३४ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।२९ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें १।२४ बजेसे, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी प्रात: ६।११ बजेतक त्रयोदशी रात्रिशेष ४।४२ बजेतक	गुरु	उ० षा० ,, ६।५३ बजेतक	२७ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।४८ बजेतक	शुक्र	श्रवण सायं ५।५३ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।४८ बजेसे, **कुम्भराशि** रात्रिशेष ५।१४ बजेसे, **पंचकारम्भ रात्रिशेष** ५।१४ बजे।
पूर्णिमा ,, १२।३९ बजेतक	शनि	धनिष्ठा दिनमें ४।३६ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १।४४ बजेतक, **पूर्णिमा, रक्षाबन्धन** दिनमें १।४४ के बाद।

कृपानुभूति

'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने अपने भक्तोंको यह आश्वासन दिया है कि उनके योगक्षेमकी व्यवस्था मैं स्वयं करता हूँ। इस सन्दर्भमें दो घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(१)

स्वामी विवेकानन्दजीके जीवनकी एक घटना है। तब वे जगत्-प्रसिद्ध नहीं हुए थे और उनका जीवन भौतिक अभावोंसे गुजर रहा था। अमेरिका-यात्रासे पूर्व उन्होंने सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया। एक बार वे रेलसे यात्रा कर रहे थे, उन्हें बड़ी जोरसे भूख-प्यास लग रही थी, किंतु उनके पास कुछ नहीं था। वे चुपचाप बैठे थे। उनके सामनेकी सीटपर एक सेठजी सपरिवार यात्रा कर रहे थे, उनके पास सब साधन थे, वे खाते-पीते यात्रा कर रहे थे। वे स्वामीजीकी पूरी यात्रामें हँसी उड़ाते रहे कि कैसा हट्टा-कट्टा संन्यासी है, निठल्ला है; कुछ काम नहीं करता, फोकटका खाता है। एक हम हैं, खूब मेहनत करते हैं और ठाटसे रहते हैं। स्वामीजीने उसकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया, चुप बैठे रहे।

गन्तव्य स्टेशन आया, सेठजी और स्वामीजी एक साथ उतरे और स्टेशनपर एक पेड़के नीचे सीटपर बैठ गये; किंतु सेठजीका उपहासका क्रम नहीं टूटा। तभी एक हलवाई आया। उसने स्वामीजीको प्रणाम किया, साथ लाये आसनपर बैठाया और गरम-गरम भोजन परोसने लगा तथा एक गिलास पानी रखा। विवेकानन्दजीने सकुचाकर कहा—'भाई! तुम्हें गलतफहमी हुई है, तुम जिसके लिये कर रहे हो, वह मैं नहीं हूँ। मेरा यहाँ कोई परिचित नहीं, मैं तो एक संन्यासी हूँ।' हलवाई बोला— महाराज! मैं तो अपनी दुकानपर बैठा ऊँघ रहा था। तभी मुझे नींद लग गयी। सपनेमें भगवान् राम आये और कहा— 'तू यहाँ बैठा-बैठा ऊँघ रहा है, वहाँ स्टेशनपर मेरा भक्त भूखा-प्यासा बैठा है। जल्दी उठ, पूड़ी-सब्जी बना और ठण्डा पानी ले जाना मत भूलना, उसे बहुत प्यास लगी है।' मैं चौंककर जगा, किंतु भ्रम समझकर फिर सो गया। भगवान् राम फिर सपनेमें आये और डाँटकर कहा—'सुनता नहीं है, फिर सो गया, चल उठ, मैंने जैसा कहा है, वैसा कर। उन्होंने सपनेमें आपका स्वरूप भी दिखाया। अब बस, मैं फटाफट उठा, पूड़ी-सब्जी बनायी और दौड़ता आया हूँ। आप वही हैं, जैसा मैंने सपनेमें देखा था। सेठजीने यह सब सुना, देखा और उन्हें अपने कृत्यपर ग्लानि हुई और उन्होंने स्वामीजीके चरण पकड़कर माफी माँगी।

(२)

मेरे जीवनकी एक घटना है। बात सन् १९७४ ई० की है। मेरी नौकरी अजमेर शहरमें लगी और मेरा मित्र सिंचाई विभाग भीलवाड़ामें ओवरसियर हो गया। वह कभी डाकबँगलेमें रह जाता, कभी किरायेके मकानमें रात गुजार देता। हम दोनों अविवाहित थे। एक दिन हमारा कार्यक्रम बना धनोपमाता (भीलवाड़ा)-के दर्शन करनेका। उसने कहा कि तुम डाकबँगले आ जाना। मैं निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार सुबह नहा-धोकर बसमें बैठकर डाकबँगलेवाली रोडपर उतर गया। उस दिन बहुत तेज बारिश हुई थी और डाकबँगलेकी कच्ची रोडपर कीचड़ हो गया। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि उधरसे डाकबँगलेका चपरासी आता दिखायी दिया। उसने मुझे बताया कि साहब तो बरसातके कारण रातको ही किरायेके मकानपर सोने चले गये थे। अब मैं क्या करता, मेरी तो हालत खराब थी। भूख-प्याससे मैं व्याकुल था। पैसे तो मेरे पास थे, पर सड़क सूनी थी; मैं पैदल ही आगेकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें एक गाँव आया; मैंने एक ग्रामीणसे पूछा—'यहाँ कहीं चाय-नमकीन मिल जायगी क्या?' उसने एक मकानकी तरफ इशारा कर दिया। मैंने उस मकानपर जाकर चायके लिये प्रार्थना की; क्योंकि मेरे लिये वह अनजान जगह थी।

मुझे आश्चर्य हुआ जब मकानमालिक एक काँसेकी थालीमें रोटी और कटोरीमें चनेकी दाल लेकर आये। मैं बोला—'भाई! मैंने तो चाय माँगी थी।' वे बोले—'बाबूजी! आप संकोच न करें—मुझे मालूम है आप भूखे हैं।' मैं उसके प्रेमभरे आग्रहको टाल न सका; वैसे भी मुझे बहुत भूख लग रही थी। वह भोजन मुझे अमृत-समान लगा। फिर मेरी मित्रसे मुलाकात हो गयी एवं माताका दर्शन भी हो गया।

इन घटनाओंसे सिद्ध होता है कि परमपिता परमात्मा ही सबका योगक्षेम वहन करते हैं।—**सुरेश शर्मा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

साथी हाथ बढ़ाना

पूना और मुम्बईमें अधिक अन्तर नहीं है। अन्तर इतना ही है कि पूना है शान्त और स्वस्थ, जबकि मुम्बई अलमस्त और अस्वस्थ। तूफानमें चक्कर काटते हुए पत्तेकी भाँति लोग वहाँ दौड़ते रहते हैं। लोकल ट्रेनें मुम्बईकी प्राण ही हैं। लोग जब 'आठ बत्तीसवाली पकड़नी है,' 'पाँच-पच्चीसवाली लगती है, चली गयी।' 'साढ़े सातवालीकी आज आशा नहीं है'—ऐसा बोलते हैं, तब कितना अजीब लगता है!

छुट्टियोंमें मुम्बई गया था। दादर स्टेशनपर बैठा था। कहीं जानेकी शीघ्रता नहीं थी, इसलिये निश्चिन्तताके साथ घड़ीकी सुइयोंकी तरह दौड़ती हुई भीड़को देखनेका आनन्द ले रहा था। पूनामें यह सब कहाँ देखनेको मिलता है।

'साब! पोलिश'—मेरे रंगमें भंग हुआ।

मैंने मना किया, परंतु फिर न जाने क्या सोचकर 'चमक बढ़ाओ' वाली बात कहकर अपना जूता आगे बढ़ा दिया। पालिशवालेने अपने साधन नीचे रखे और मैं भी पालिश करनेवाले स्टैण्डके पास ही स्थितप्रज्ञ की तरह खड़ा हो गया।

उसने काम प्रारम्भ तो किया, परंतु उसमें मजा नहीं आ रहा था। मुम्बईवालोंकी स्फूर्ति उसमें नहीं थी। जब अधिक देर खड़ा रहना सहन-शक्तिके बाहर हो गया, तब मुँहसे निकल गया—'अरे भाई! कैसे ठण्डे दिमागसे काम करते हो। कुछ शीघ्रता करो।' वह मौन रहा। मुझे उसका मौन रहना अच्छा नहीं लगा, परंतु किया क्या जाय? इतनेमें दूसरा पालिशवाला वहाँ आ गया। उसने इसको तुरंत अलग कर दिया और स्वयं काममें जुट गया। काम एकदम फटाफट। पहलेवाला गूँगेकी तरह एक ओर खड़ा रहा। मुझे ऐसा लगा कि यह अभी नया-ही-नया है। इसलिये ये मुम्बईके उस्ताद पालिशवाले उसे अपने ढंगसे परेशान करते हैं।

पैसे किसे देने हैं, इसपर विचार करते हुए मैंने जेबमें हाथ डाला। मुझे लगा कि अभी इन दोनोंमें पैसोंके लिये झगड़ा या मारपीट होगी। 'समर्थहीका सब कुछ' इस सिद्धान्तके अनुसार मैंने बादमें आनेवाले पालिशवालेको पैसे दिये। उसने पैसे ले तो लिये, परंतु तुरंत ही पहलेवालेको दे दिये। प्रेमसे पीठ थपथपायी और हाथ मिलाकर चल दिया। अब मैं थोड़ा स्वस्थ हुआ। मैंने उसको तुरंत वापस बुलाया और सीधा प्रश्न किया—'यह क्या चक्कर है?'

'साब, ये किशन तीन महीने पूर्व चलती लोकल ट्रेनसे बाहर गिर गया था। बहुत चोट आयी। पैरमें १८ से २० टाँके आये और हाथमें भी बहुत चोट आयी। बेचारा बच ही गया; नहीं तो वृद्धा माँ और पाँच बहनोंका क्या होता—इधर-उधर भटकती फिरतीं।'

अब किशन पहलेकी भाँति स्फूर्तिसे काम नहीं कर सकेगा, यह सोचकर स्टेशनपर रहनेवाले हम सब साथियोंने तय किया कि प्रत्येक अपने एक जोड़ी जूतेकी आय नित्य किशनको दिया करेंगे और अवसर पड़नेपर उसके काममें सहायता भी करेंगे। दूसरे पालिश करनेवालेकी बात सुनकर मैं तो चकित ही रह गया।

किशन तथा उसके साथी स्टेशनपर आने-जानेवाले सब यात्रियोंको मानो सन्देश दे रहे हों—'साथी हाथ बढ़ाना।'

इस बातको कितना समय हुआ, स्मरण नहीं, परंतु जब भी मैं मुम्बई या विशेषकर दादर स्टेशनपर जाता हूँ, तब किशन और उसके साथी स्मरण हो ही आते हैं। दादर स्टेशनकी अपार भीड़में भी मेरी आँखें किशनको ढूँढ़ती रहती हैं। (अखण्ड-आनन्द)

—विजय रतिलाल पीर

(२)

आदर्श शिक्षक

यह घटना लगभग छह-सात वर्ष पूर्वकी है। मुझे

अपनी बेटीको घरपर पढ़ानेके लिये किसी उपयुक्त शिक्षककी आवश्यकता थी। मैंने अपने एक मित्रको अपनी समस्या बतायी। उन्होंने एक बंगाली सज्जनको मेरे घर भेज दिया।

वे एक वयोवृद्ध सीधे-सादे व्यक्ति थे। उन्होंने अपना परिचय दिया। उनसे मेरी बातचीत हुई। उन्होंने बताया कि वे और भी कई बच्चोंको घर जाकर पढ़ाते हैं। उनकी जीविकाका यही साधन था। मुझे वे ठीक-ठाक लगे। मैंने अपनी बेटीको उनसे मिलवाया। उन्होंने उसकी कापियाँ वगैरह देखीं। उससे उसकी पढ़ाईके बारेमें पूछा; मैंने उनसे कहा कि वे मेरी बेटीको एक दिन पढ़ाकर देख लें, यदि उन्हें ठीक लगा तो बाकी बातें हम बादमें तय कर लेंगे। उन्होंने कहा ठीक है।

अगले दिन वे अपने बताये गये समयपर आ गये। उन्होंने मेरी बेटीको पढ़ाया। पढ़ानेके पश्चात् उन्होंने कहा—यदि आप चाहें तो मैं इसे कलसे पढ़ाने आ सकता हूँ। बेटीको मैंने अलग बुलाकर पूछा। उसने बताया कि वह उन शिक्षक महोदयके पढ़ानेसे सन्तुष्ट है। उनका पढ़ानेका ढंग बहुत अच्छा है और वह उनसे पढ़ना चाहती है। मैंने शिक्षक महोदयको बता दिया—आप कलसे पढ़ाने आ सकते हैं। मैंने उनके साथ बैठकर सब बातें तय कर लीं कि सप्ताहमें किस-किस दिन आयेंगे और कितने बजेसे कितने बजेतक पढ़ायेंगे इत्यादि। अब बस अन्तिम बात यह तय करनी थी कि वे पढ़ानेके लिये हर महीने कितने रुपये लेंगे।

मैंने इस सम्बन्धमें सोच-विचारकर पहलेसे ही एक धनराशि अपने मनमें निश्चित कर रखी थी। फिर भी मैंने इस सम्बन्धमें साफ-साफ बात कर लेना उचित समझा। उन्होंने जो धनराशि बतायी, वह मेरी सोची हुई धनराशिसे कम थी और उनके परिश्रमको देखते हुए भी मुझे कम ही लग रही थी। अत: मैंने उनसे कहा कि मैंने तो इससे कुछ अधिक ही सोच रखा था। मैंने उनसे वह धनराशि बता भी दी। मेरी बात सुनकर वे मुसकराये और मेरी स्पष्टवादिताके लिये मुझे धन्यवाद भी दिया, किंतु अत्यन्त विनम्रतासे उन्होंने मेरे इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि जितना वे इस कक्षाके अन्य बच्चोंसे लेते हैं, उतना ही मेरे से भी लेंगे। मुझे उनका यह व्यवहार बड़ा अप्रत्याशित-सा लगा। मैंने उनसे कहा कि जब मैं स्वेच्छासे अधिक देना चाह रहा हूँ तो उसे वे क्यों अस्वीकार कर रहे हैं! पर दादाने मुसकराकर मना कर दिया। अन्तत: मुझे उनकी बात माननी ही पड़ी।

मैंने कहा—ठीक है दादा! मैं आपकी बात मान ले रहा हूँ, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके ऐसा करनेके पीछे क्या कारण है? इसपर दादाने बड़े संकोचसे कहा—श्रीवास्तवजी! मैं भी मनुष्य हूँ और मनुष्योचित दुर्बलताएँ मुझमें भी हैं, यदि मैं आपसे अधिक पैसा लूँगा तो न चाहते हुए भी आपकी बच्चीपर अधिक ध्यान दूँगा और इसी कक्षाके अन्य बच्चे जो आपसे कम पैसे दे रहे हैं, उनपर कम ध्यान दूँगा। यह उन बच्चोंके साथ अन्याय होगा। बस, यही कारण है, आशा है आप इसे अन्यथा न लेंगे।

दादाका उत्तर सुनकर मैं चुप हो गया। मन-ही-मन नतमस्तक हो गया एक ऐसे व्यक्तिके समक्ष, जो कि आजके इस दौरमें जबकि शिक्षाका घोर व्यवसायीकरण हो रहा है, अपनी अन्तरात्माकी आवाजको बिना दबाये, आदर्श शिक्षकका कर्तव्य निभा रहे थे।

—कैलाश पंकज श्रीवास्तव

(३)

मानवताकी मिसाल

यह घटना ३ जून, सन् २०१४ ई० की है, मैं कुम्भराज जिला गुना (म०प्र०)-का निवासी हूँ। मेरी पोती गोपिका कासट एक सर्विसके लिये इण्टरव्यू देने देहली गयी थी। लौटते समय ग्वालियरसे बसद्वारा गुना आना था। उसने रात्रि बससे ग्वालियरसे गुनाके लिये प्रस्थान किया। उसके पास एक बैग था, जिसमें सर्विससे

सम्बन्धित कागज, मार्कशीट तथा अन्य जरूरी दस्तावेज रखे थे। उसने उसे अपने पास सीटपर रख लिया। शिवपुरी निकलनेके बाद नदी आ गयी और बैग शिवपुरी गुनाके बीच बसमेंसे कहीं गिर गया, जिसका उसे पता न चला। गुना पहुँचनेपर उसने देखा कि बैग अपने स्थानपर नहीं है तो पूरी बसकी छानबीन की, पर बैग नहीं मिला। परिचालकसे सम्पर्क किया, उसने भी कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। बसको इन्दौर जाना था, बस चली गयी। बैगमें जरूरी कागज थे, इसलिये कागज खोजनेकी बेचैनी बढ़ गयी। मेरी पोतीने किरायेपर टैक्सीकर गुनासे शिवपुरी मार्गका निरीक्षण करनेका मन बनाया। उसने रास्तेमें पड़नेवाले होटलों और सड़कके किनारेके गाँववालोंसे निवेदन किया कि बैग किसीको मिले तो ध्यान रखें, उचित इनाम देंगे, परंतु इतना सब करनेपर भी बैगका पता न चला। निराश होकर वह वापस लौटकर कुम्भराज आ गयी।

कुम्भराज आनेपर पुनः कागज बनवानेकी प्रक्रियापर विचार-विमर्श किया जा रहा था। अचानक ५ जून, सन् २०१४ ई० को भरतपुर (राजस्थान)-से एक अपरिचित सज्जनका फोन आया। उन सज्जनने बतलाया कि गोपिका कासट पिता सुदर्शन कासटका एक बैग मिला है, उसमें जरूरी कागज, मार्कशीट आदि हैं। आप यह बैग हमसे प्राप्त कर लें। भीषण गर्मी और भरतपुरकी दूरीको देखते हुए हमने उनसे निवेदन किया कि हमारा बैग भरतपुरमें हमारे परिचितको देनेकी कृपा करें। हम सुविधानुसार उनसे बैग प्राप्त कर लेंगे, लेकिन उन्होंने हमारा अनुरोध स्वीकार नहीं किया।

वे सज्जन पत्रकार थे। उन्होंने कहा कि यह बैग हमारे भाईको मिला है। वे ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं हैं, ट्रैक्टर चलाते हैं। वे खण्डवा (म०प्र०)-से कृषिकार्य पूर्णकर अपने घर ग्राम नगलानन्दराय भरतपुर वापस आ रहे थे, मार्गमें बदरवास शिवपुरीके पास बैग उन्हें मिला है। कागजोंमें लगे बच्चीके फोटूके अनुरूप बच्चीको देखकर ही कागज और बैग देना चाहते हैं। आप बच्चीको लेकर भरतपुर आकर बैग और कागज ले जायँ। हमें तो कागज और बैग जरूरीमें चाहिये था, इसलिये उनसे कह दिया कि हम ६ जून, सन् २०१४ ई० को सुबह १० बजेतक भरतपुर पहुँच रहे हैं।

अब आगेके प्रसंगपर ध्यान दीजियेगा, ६ जून, सन् २०१४ ई० को सुबहका फोन आया कि आप भरतपुर कितने बजेतक पहुँच रहे हैं ताकि मैं बैग लेकर आपको बस स्टैण्डपर मिल सकूँ और बैग आपको दे सकूँ, जिससे आपको किसी प्रकारकी परेशानी या असुविधा न हो। लेकिन बसकी असुविधाके कारण जो समय हमने उन्हें भरतपुर पहुँचनेका दिया था, उसपर हम नहीं पहुँच सके। दोपहर बीतनेपर भरतपुर पहुँचकर हमने इनसे सम्पर्क किया और बैग प्राप्त किया।

वे सज्जन मानवता, आत्मीयता और स्नेह के मूर्तिमान् स्वरूप थे। जैसे ही बच्ची बससे नीचे आयी तो उन्होंने 'बहन' कहकर अश्रुपूरित नेत्रोंसे उसके चरण-स्पर्श किये। भीषण गर्मीमें कष्टके लिये मुझसे क्षमा-याचना करते हुए भोजन और नाश्तेका अनुरोध किया। साथमें यह भी कहा कि भरतपुरसे ५ कि०मी० की दूरीपर मेरा गाँव है। मेरी पत्नी-बच्चे आपको देखना चाहते हैं। आप मेरे गाँव पधारें। मुझे परिवारसहित बहुत प्रसन्नता होगी। मेरे गाँवसे गोवर्धन ३८ कि०मी० की दूरीपर है, मैं आपको दर्शन कराऊँगा। लेकिन समयके अभावसे यह सम्भव नहीं हो सका। पुनः आनेका आश्वासन देकर गद्‌गद हृदयसे विदा ली। चलते समय उन्होंने मेरी पोतीको भेंटस्वरूप १०० रुपये नगद दिये और मार्गमें पीनेके लिये ४ बोतल ठण्डा पानी दिया। इतना ही नहीं भरतपुरसे आगरातकके वापसीके टिकट भी कटाकर दिये।

इस घटनाको घटे एक वर्ष हो गया, पर जब-जब इसकी स्मृति आती है, मन यह सोचकर आनन्दसे भर उठता है कि आज भी ऐसे महामानव हैं, जो दूसरेके जीवनको सुखी बनानेके लिये प्रयासरत रहते हैं।

—श्यामबिहारी कासट

मनन करने योग्य

गुण और योग्यता

एक थे सेठजी, उनके तीन पुत्र थे। उन्होंने एक दिन अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—'अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन जाने अब कितने दिन जी पाऊँगा। परंतु तुमलोगोंसे एक बात पूछनेकी इच्छा है। बोलो, तुमलोग मुझे कितना चाहते हो?'

सबसे बड़े पुत्रने कहा—'पिताजी! आपके प्रति मेरा प्रेम समुद्रकी तरह अथाह है। मैं आपको बहुत चाहता हूँ।'

मझले पुत्रने कहा—'पिताजी! आपके प्रति प्रेमकी तुलना मैं किसी दूसरेसे नहीं कर सकता।'

सबसे छोटेने कहा—'पिताजी! मैं तो इतना जानता हूँ कि आप मेरे पिता हैं और पिता-पुत्र दोनों एक-दूसरेको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं।'

तीनों पुत्रोंकी बात सुनकर सेठजी चुप रहे।

कुछ दिनोंके बाद सेठजीने अपने मुनीमको बुलाकर कहा—'मुनीमजी! अब मैं वृद्ध हो गया। मेरी इच्छा है कि अब मैं तीर्थयात्रा कर लूँ और मैं कल ही यात्रापर जानेवाला हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें गद्दीका काम-काज ठीकसे चले, इसका ध्यान रखियेगा। सेठजी दूसरे ही दिन तीर्थयात्रापर निकल पड़े।'

दो-एक महीने बाद समाचार मिला कि सेठजीका रास्तेमें ही स्वर्गवास हो गया। यह समाचार सुनकर पूरा परिवार शोकमें डूब गया।

सेठजीका सारा व्यापार अब लड़कोंके हाथमें आ गया था, परंतु सेठजीके इच्छानुसार मुनीमजी गद्दीकी तथा काम-काजकी देख-रेख रखते थे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया।

एक दिन एक वृद्ध संन्यासी सेठजीके घरके दरवाजेपर आ खड़े हुए। उन्होंने देखा कि एक युवक साधारण अवस्थामें उदास-सा कुछ दूर बैठा है। संन्यासीने उसके पास जाकर पूछा—'बेटा! तुम इस तरह उदास क्यों बैठे हो?'

उसने बताया—'महात्माजी! मेरे पिताजी एक वर्ष पहले तीर्थयात्रापर गये थे। रास्तेमें ही उनका स्वर्गवास हो गया। उन्हींके वियोगसे मैं उदास रहने लगा हूँ। मैं उन्हें भूल नहीं सकता।' और इतना कहनेके बाद उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

उस संन्यासीने पूछा—'तुम्हारे दूसरे भाई हैं?'

जी हाँ, हम तीन भाई हैं। मझला तो पिताजीके स्वर्गवास होनेके बाद मौज-मस्तीमें खो गया है। पिताजीकी सम्पत्ति उड़ा-खा रहा है। मैं तीनोंमें ज्येष्ठ हूँ, परंतु स्वस्थ न रहनेके कारण सारा काम-काज मेरा सबसे छोटा भाई ही देखता है। वह व्यापारकी देख-रेख परिश्रम और ईमानदारीसे करता है, परंतु मझला उसके कार्यमें प्रायः बाधा डालता है, इस कारण हम दोनोंको उसीकी चिन्ता रहती है।

संन्यासी वहाँसे उठकर सीधे सेठजीकी गद्दीपर पहुँचे।

सेठजीकी कुर्सीपर बैठे एक तेजस्वी युवकने विनम्रतासे संन्यासीकी ओर देखकर पूछा—'महात्माजी! आपकी हम क्या सेवा करें?'

उसके इतना कहते ही संन्यासी उसके पास जाकर एकदम उससे लिपट गये और बोले—'बेटा! तुमने मेरी इच्छा पूरी की है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम तीनों भाइयोंके गुण और योग्यताकी परखके लिये ही मैंने झूठा समाचार भिजवाया था और एक वर्षतक हरिद्वारमें रहा। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम ही मुझे अधिक चाहते हो। तुम्हारेमें वे गुण और योग्यताएँ हैं, जो एक श्रेष्ठ पुत्रमें होना चाहिये। परंतु बेटा! अपने बड़े और मझले भाइयोंका भी ध्यान रखना और उन्हें भी अपने-जैसा बनानेकी चेष्टा करना। मैं तो अब वापस हरिद्वार जा रहा हूँ।'

पुत्रके बहुत समझानेपर भी पिताने घर-गृहस्थीका मोह छोड़ दिया और वे हरिद्वारमें जाकर भगवद्भजन-परायण हो गये।

प्र० ति० २०-६-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

श्रावणमास १ अगस्त दिन शनिवारसे प्रारम्भ हो रहा है।

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 789, ग्रन्थाकार, सजिल्द— इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२००, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹४० अतिरिक्त। (**कोड 1468**) विशिष्ट सं० मूल्य ₹२५०, (**कोड 2020**) मूल, मोटा टाइप, मूल्य ₹२५०, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹४५ अतिरिक्त। (**कोड 1286**) गुजराती, (**कोड 975**) तेलुगु, (**कोड 1937**) बँगला, (**कोड 1926**) कन्नड़ भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
1985	लिङ्गमहापुराण—सटीक	२००	204	ॐ नमः शिवाय-चित्रकथा	२५	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	३
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	३५	1343	हर हर महादेव ,,	२५	1185	शिवचालीसा-लघु (बँगला भी)	२
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	३०	1954	शिव-स्मरण	१०	1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	८
1899	श्रावणमास-माहात्म्य ,,	३२	1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	१२	230	अमोघ शिवकवच	३
1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	५	1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	३०

श्रीमद्भागवतमहापुराण

श्रीमद्भागवतमहापुराण—बेड़िया, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप— श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेड़िआ ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको सुविधा होगी एवं व्यास-पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है। (**कोड 1951-1952**) दो खण्डोंमें सेट। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹८००

श्रीमद्भागवतके अन्य संस्करण

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 26-27) सटीक दो खण्डोंमें सामान्य संस्करण। (ओड़िआ, बँगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, अंग्रेजी)

श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1930) ग्रन्थाकार— सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, (गुजराती, मराठी, तेलुगु, कन्नड़ भी)

श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1945) ग्रन्थाकार, विशिष्ट संस्करण

श्रीशुक-सुधासागर (कोड 25) बृहदाकार— भाषानुवाद।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 29)— मूल, मोटा टाइप (तेलुगु भी)

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 124)— मझला मूल।

,, विशिष्ट संस्करण (**कोड 1855**)— ,, मूल,

भागवतस्तुतिसंग्रह (**कोड 1092**)

श्रीप्रेमसुधासागर (**कोड 30**)—(ओड़िआ भी)

श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध (**कोड 31**)

जीवन-संजीवनी (**कोड 1927**)— श्रीमद्भागवतके सफल व्यावहारिक जीवन-सूत्र।

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।